स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–18, अंक–3, फाल्गुन–चैत्र 2066–2067, मार्च, 2010

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर-8, बाबू गेनू मार्ग रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-110022 से प्रकाशित
दूरभाष : 011-26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित।

आवरण कथा-5

वित्त मंत्री ने कमाल कर दिया! क्या शानदार बजट है! देखों इसका सकारात्मक असर! राजस्व घाटा साढ़े पांच फीसदी पर नियंत्रित कर दिया गया है. . . .!

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण लेख
प्रणव का भ्रमित बजट
– एस. गुरुमूर्ति 5

बजट समीक्षा
कृषि और रोजगार की फिर हुई अनदेखी
– डॉ. अश्विनी महाजन 7

महंगाई और गरीबी बढ़ाने वाला बजट
– बलबीर पुंज 10

कृषि
कृषि का अमेरिकी मॉडल
– देविन्दर शर्मा 12

मंथन
पिछड़ा क्यों है भारत?
– निरंकार सिंह 15

चिंतन
यह आर्थिक विकास दुख क्यों पैदा कर रहा है
– डॉ. भरत झुनझुनवाला 19

मुद्दा
भ्रष्टाचार के घेरे में वैक्सीन
– भारत डोगरा 22

मानवाधिकार
भारत में मानवाधिकार
– उमाशंकर मिश्र 24

अर्थव्यवस्था
उम्मीद के सहारे अर्थव्यवस्था
– आलोक पुराणिक 28

राजनीति
राजनीति से दूर मत भागिये
– प्रभात झा 29

गोवंश
एजोला लगाओ, गोवंश बचाओ
– डॉ. रणजीत सिंह 33

श्रद्धांजलि : आधुनिक चाणक्य – नानाजी देशमुख 35

पाठकनामा / 2, समाचार परिक्रमा / 4
आंदोलन / 36

पाठकनामा

विक्रम संवत 2067

स्वदेशी पत्रिका के पाठकवर्ग को विक्रम संवत 2067 की हार्दिक शुभकामनाएं। हिंदू नववर्ष को अंगीकार कर जीवन को संस्कृतिनिष्ठ बनाने और उस पर अमल करने का यह महत्वपूर्ण दिवस है। आज हमारा जीवन आधुनिक साधनों से पूर्ण है। भोग और विलास हमारी जिंदगी पर इस कदर हावी हैं कि हम अपनी सभ्यता और लोकजीवन शैली को भूलते जा रहे हैं। आइए हम हिंदू नवदिवस को मनाए और जीवन को सुसंस्कृत व पवित्र चित बनाएं। हिन्दू नववर्ष 2067 की हार्दिक शुभकामनाएं। — **सं.**

कौन है जिम्मेदार हिंदू समाज और गरीबी का

स्वदेशी पत्रिका काफी दिनों से कुछ न कुछ मुद्दे प्रकाशित करती ही रहती है। परंतु आज देश के जो हालात हैं अभी भी इसे प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। आज हिंदू समुदाय अपने ही देश में अनजान है। उसे कांग्रेस–भाजपा दिनों ने ही नकार दिया है। हिंदू समुदाय में गरीबी दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है इसके बारे में कोई भी पार्टी बोलने को तैयार नहीं है। अभी हाल ही में एक आश्रम के भंडारे में बीस रुपए और एक थाली के लिए मची भगदड़ में करीब 100 से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। मरे हुए लोगों को देखकर शायद ही कोई पार्टी यह सोचने पर मजबूर नहीं होगी आखिर यह हुआ क्या है? साफ जाहिर है कि हिन्दू समाज में गरीबों का आंकड़ा दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। अब नेताओं को समझ लेना चाहिए कि दूसरे देशों की मदद करने से पहले अपने घर में बैठे गरीबों को देखना।

नेताओं के अलावा आज शहरों में बैठे शहरी भी देश में बेरोजगारी पैदा करने में जुटे हुए हैं वे अपने घरों और ऑफिसों में बंगलादेशी महिलाओं और पुरुषों को काम देते हैं, साथ ही शरण भी। इनके ऊपर सरकार की तरफ से कोई भी कार्यवाही नहीं होती है। हम सब देश हित की बात करते हैं परंतु खुद देश को गड्डे में धकेल रहे हैं। सबसे पहले बंगलादेशी लोगों को भारत से बाहर का रास्ता दिखाना होगा। जो आज शहरों में काफी संख्या में पहुंच चुके हैं। समस्या की जननी हम सब लोगों ने की हैं इस जननी को हटाने का काम सरकार का है लेकिन सरकार केवल अपने वोट बैंक से मतलब रखती है। अब वक्त आ गया है कि देश हित के बारे में सोचना है तो देश के लोगों के बारे में भी सोचना होगा।

— नूपुर भट्टाचार्य, साकेत, नई दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क ***'स्वदेशी पत्रिका'*** दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्कः 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

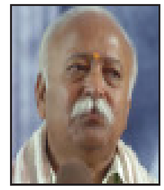

अमेरिका दुनिया पर एकाधिकार चाहता है और अपनी अर्थव्यवस्था सुधारने के लिए वैश्वीकरण थोपने के प्रयास में है।

— मोहन भागवत,
सरसंघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

यह बजट जन विरोधी, किसान विरोधी और गरीब विरोधी है। इससे महंगाई बढ़ेगी और लोगों का जीना दूभर हो जाएगा।

— सुषमा स्वराज, भाजपा

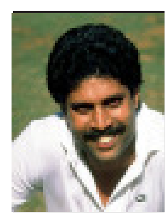

तेंदुलकर गंभीरता की प्रतिमूर्ति हैं। वह समर्पित और कुछ हासिल करने के लिए बहुत जुनूनी है।

— कपिल देव, पूर्व क्रिकेटर

भारत का नेतृत्व जितना कमजोर है, उतना किसी राष्ट्र का नही। आज गरीब का दम निकल रहा है और अमीरों की तिजोरियां भर रही है।

— बाबा रामदेव, योग गुरू

संपादकीय

बजट से सरकार की असली सोंच उजागर

बजट प्रस्तुत करने के बाद वित्तमंत्री जब कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की तरफ मुड़े तो उनका मुस्कान से स्वागत हुआ। तब ही यह स्पष्ट हो गया कि पेट्रोलियम पदार्थों की कीमत में वृद्धि का फैसला सिर्फ पेट्रोलियम या वित्त मंत्रालय का नहीं है, बल्कि इसमें कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की भी सहमति है। यह बताना कोई आवश्यक नहीं है कि सरकार सोनिया गांधी के इशारे पर ही चलती है, बस इस प्रकरण के माध्यम से यह इंगित करना है कि आम आदमी को केंद्र में रखकर सत्ता तक पहुंची सोनिया गांधी और कांग्रेस पार्टी की सोंच क्या है। इस पर उन्होंने खुद ही तब और पुख्ता मुहर लगा दिया जब मंहगाई के मुद्दे पर बुलाई गई कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में उन्होंने खुद कहा कि पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों में वृद्धि वापस नहीं ली जाएगी। यह मूल्य वृद्धि अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी है। अर्थव्यवस्था मजबूत बनाए रखने के लिए वित्तमंत्री को राजकोषीय घाटे पर काबू रखना जरूरी है। शायद एक कंपनी चलाने वाले किसी निदेशक के लिए यह फैसला उचित भी है कि घाटे की भरपाई के लिए कुछ कड़े कदम उठाए जाएं। लेकिन देश के चलाने वाले यदि कंपनी की तरह फैसले लेने लगेंगे तो यह लोकतंत्र नहीं बचेगा। सरकार का सामाजिक दायित्व है कि वह देश के हर नागरिक की पेट और तन की चिंता करे।

अर्थतंत्र के वे सारे प्रावधान जिनसे देश का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रभावित होता हो उसे यूं हल्के में नहीं लिया जा सकता। बजट से सिर्फ महंगाई बढ़ेगी और बेचारा आम आदमी मारा जाएगा। उसके लिए जीना पहले ही दूभर हो गया था, अब इस बजट के बाद तो वह टूट गया है। और सरकार को देखिए। आकड़ों को सुलझाने में लगी है। उसके लिए पांच फीसदी के आस पास राजकोषीय घाटे को बनाए रखना ज्यादा महत्वपूर्ण है, पर रोजाना पांच करोड़ लोगों को भूखे सोने पर मजबूर करना आम बात भी नहीं है।

वित्त मंत्री जब यह कहते हैं कि करो में छूट प्रदान कर उन्होंने आम आदमी की जेब में अतिरिक्त पैसा भर दिया है, तो उनको याद करके रूह कांप जाता है, जिन्हें यह मालूम भी नहीं है कि आय कर क्या होता है। जब 75 फीसदी लोग आयकर रिटर्न भरते तक नहीं उनके लिए किसी कर की कटौती का क्या मतलब। जब संसद में महंगाई को लेकर हो हल्ला हुआ तो कृषि मंत्री ने बयान दिया मंहगाई अब कम हो रही है। दाल में एक रुपये से लेकर पांच रुपये प्रति किलो तक गिरावट आई है। पवार को कौन समझाए कि बीस रुपये रोजाना कमाने वालों के लिए दाल की कीमत चाहे 100 रुपये किलो हो या फिर 99 रुपये किलो उन्हें क्या राहत मिल सकती है। लाखों टन चीनी को सड़ा देने वाली सरकार चीनी 50 रुपये किलो बेचे या फिर 45 रुपये किलो। मन की कड़वाहट कहां दूर हो सकती है।

कांग्रेस को लगातार दो बार केंद्र की सत्ता सौंपने वाली जनता को यह भरोसा था कि राहुल गांधी और सोनिया गांधी जिस तरह मीडिया के जरिए खुद को गरीब समर्थक होने का प्रचार कर रहे है, उनसे इस बजट में राहत जरूर मिलेगी। लेकिन इस बजट से उनकी उम्मीदें धराशायी हो गईं। लोगों को तब और गहरा धक्का लगा जब उन्होंने सोनिया गांधी के मुख से यह सुना कि डीजल की कीमत जरा भी कम नहीं होगी।

क्या यही कांग्रेस का असली रूप है। कौन जानता है। पर देखे जनता को यह कब समझ आती है कि महंगाई और कांग्रेस एक दूसरे के पर्याय ही हैं। इतिहास गवाह है कि जब जब केंद्र में कांग्रेस की सरकार आई है तब तब महंगाई चरम पर पहुंची है। कालाबाजारी का बोलबाला रहा है ओर आम जनता यूं ही पिसती रही है। जनता को चाक में डाल कर पिसने की आदत कांग्रेस की ही रही है।

पूंजीपतियों वाला बजट है - किसान

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् पूसा में आयोजित कृषि मेले में आए कृषकों ने बजट को पूंजीपतियों का बजट बताया। कृषि मेले में देश के सभी कृषि उत्पादक राज्यों से किसान पहुंचे। कृषि मंत्री शरद पवार ने किसानों को लुभावने का काफी प्रयास किया। परंतु बजट को देकर भारतीय किसान में काफी आक्रोश साफ दिख रहा है।

किसानों ने कहा कि संसद में पेश बजट में किसानों के लिए कुछ भी नहीं है। कई किसानों ने कहा आबादी के बजाय बजट में कम आबादी वाले लोगों का खास ख्याल रखा जाता है। फसल किसान उगाता है लेकिन कीमत पूंजीपति तय करते है। अधिक पैसा खर्च करने के बाद भी खाद मिलावटी ही मिलता है। इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है। खैर वर्तमान बजट से किसान वर्ग काफी नाराज है।

41 हजार प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर

अंतरराष्ट्रीय संरक्षण संघ (आईयूसीएन) की रेड लिस्ट के अनुसार इस समय धरती पर जीव जंतुओं और पेड़–पौधों की लगभग 41 हजार प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर खड़ी है।

रिपोर्ट के अनुसार जैव विविधता की दर में निरंतर हो रही कमी और इंसानी हस्तक्षेप के चलते विलुप्त होने वाली प्रजातियों की संख्या हर साल बढ़ती ही जा रही है। यदि सभी देशों की सरकारों ने समय पर सही कदम नहीं उठाए तो यह स्थिति और भी भयावह हो सकती है। आधुनिकता की इस दौर में मानव ने अपने विकास के चलते इन प्रजातियां पर किसी भी प्रकार का ध्यान नहीं दिया जिसके चलते आज दुनियाभर में बेजुबान जीव–जंतुओं पर खतरा मंडरा रहा है। आवास स्थलों में इंसानी घुसपैठ और विपरीत परिस्थितियों के चलते इसलिए आज 41 हजार से अधिक प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर है।

क्यों जरूरी है महिलाओं को शिक्षा देना (नारी शक्तिकरण)

आज किसी भी समाज की उन्नति शिक्षा के बिना संभव नहीं है। आधी आबादी भी इस सत्य से अछूती नहीं है। लेकिन इस वर्ग के साथ एक सकारात्मक बात यह है अगर किसी बालिका को शिक्षित किया जाता है तो इससे पूरे परिवार में शिक्षा की लौ जगती है। इस सच्चाई के बावजूद भी महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में अभी हाशिए पर है। अगर समाज को समग्र रूप से तरक्की करनी है तो महिलाओं की शिक्षा देनी जरूरी है।

चीन का रक्षा बजट भारत से दोगुना

पहले से रक्षा पर भारी भरकम खर्च कर रहे चीन ने वर्ष 2010 में रक्षा बजट में करीब साढ़े सात फीसदी की बढ़ोतरी की है। इससाल चीन रक्षा पर 77.9 अरब डॉलर खर्च करेगा। यह राशि भारत के रक्षा बजट से लगभग दोगुनी है। चीन अपने रक्षा बजट को सकल घरेलू उत्पाद का महज 1.4 फीसदी बता रहा है। साथ ही इसमें की गई वृद्धि भी पिछले दो दशक में सबसे कम बताई जा रही है।

लेकिन सभी देश जानते हैं कि चीन कभी भी सेना पर किए जाने वाले खर्च के मामले में पारदर्शी नहीं रहा है। अनुमान है कि चीन जितना रक्षा बजट का दावा करता है, वास्तव में उससे दोगुनी रकम रक्षा पर खर्च करता है। चीन अपनी सेना का तेजी से आधुनिकीकरण कर रहा है। इसके तहत वह पुराने युद्धक विमानों, मिसाइलों, लड़ाकू जहाजों और पनडुब्बियों को हटा रहा है। उसकी इन गतिविधियों से भारत, अमेरिका और जापान सहित कई देश चिंतित है।

देश में शिक्षा का लेखा–जोखा

- 51 फीसदी–साक्षरता दर।
- 88.0 फीसदी कुला नामांकन दर।
- 91.7 फीसदी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने की दर।
- 52.5 फीसदी माध्यमिक शिक्षा में नामांकन दर।
- 0.9 फीसदी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में लड़कियों और लड़कों का अनुपात
- 11.0 उच्च शिक्षा में नामांकन दर।

प्रणव का भ्रमित बजट

वित्त मंत्री ने कमाल कर दिया! क्या शानदार बजट है! देखों इसका सकारात्मक असर! राजस्व घाटा साढ़े पांच फीसदी पर नियंत्रित कर दिया गया है! सरकार की उधारी 3.45 लाख करोड़ तक सीमित रह गई है। पेट्रोलियम क्षेत्र के विकास की दिशा तय कर दी गई है। ढ़ांचागत क्षेत्र को बड़ी मजबूती मिल गई है। करों में कटौती से उपभोक्ता मांग बड़ी तेजी से बढ़ेगी। मध्य आय वर्ग के लिए तो बस रियायते ही रियायते हैं! वाह . . . .बिना बजट प्रपत्रों को पढ़े उन लोगों की ये प्रतिकियाएं सिर्फ प्रणव मुखर्जी के भाषण के आधार पर थीं।

■ एस. गुरुमूर्ति

वित्त मंत्री ने कमाल कर दिया! क्या शानदार बजट है! देखों इसका सकारात्मक असर! राजस्व घाटा साढ़े पांच फीसदी पर नियंत्रित कर दिया गया है! सरकार की उधारी 3.45 लाख करोड़ तक सीमित रह गई है। पेट्रोलियम क्षेत्र के विकास की दिशा तय कर दी गई है। ढ़ांचागत क्षेत्र को बड़ी मजबूती मिल गई है। करों में कटौती से उपभोक्ता मांग बड़ी तेजी से बढ़ेगी। मध्य आय वर्ग के लिए तो बस रियायते ही रियायते हैं! वाह क्या संतुलित बजट है! इसे तो दस में से दस दिया जाना चाहिए!

ये सब कुछ वे प्रतिक्रियाएं हैं जो वित्त मंत्री के बजट भाषण के तत्काल बाद कॉरपोरेट और विश्लेषकों की ओर से आईं। बिना बजट प्रपत्रों को पढ़े उन लोगों की ये प्रतिकियाएं सिर्फ प्रणव मुखर्जी के भाषण के आधार पर थीं। लेकिन उनके इसी भाषण के दस मिनट बाद जब बजट की कॉपी एनआईसी के वेबसाइट पर टंगी, और उसकी असलियत सामने आने लगी तो ये लोग ही बंगले झांकने लगे। जो मुंबई सेंसेक्स वित्तमंत्री के भाषण के कारण सबेरे 400 अंक तक उछल गया था वह शाम तक वास्तविकता के खुलासे के साथ ही 150 अंक ऊपर जाकर बंद हुआ। वित्त मंत्री ने कौटिल्य के कथनों आदि का अपने भाषण में इस्तेमाल कर खूब वाहवाही तो लूट ली। लेकिन उस भारत को वह कुछ भी समझा न सके जो पहले से ही ऊंची मुद्रा स्फीति की दर से दबा हुआ है। उसके लिए वित्त मंत्री के भाषण में कुछ भी नहीं था। वह तो आने वाले दिनों में ही महसूस कर पाएगा कि आखिर उसे इस बजट से क्या मिला है। खैर उन पहलुओं और आकड़ों पर नजर डाले जिन्हें इस बजट में सफाई से छुपा लिया गया।

भाषण के दस मिनट बाद जब बजट की कॉपी एनआईसी के वेबसाइट पर टंगी, और उसकी असलियत सामने आने लगी तो ये लोग ही बंगले झांकने लगे। जो मुंबई सेंसेक्स वित्तमंत्री के भाषण के कारण सबेरे 400 अंक तक उछल गया था वह शाम तक वास्तविकता के खुलासे के साथ ही 150 अंक ऊपर जाकर बंद हुआ।

उदाहरण के लिए अगले वित्त वर्ष के लिए ग्रामीण विकास के मद में सिर्फ 3936 करोड़ रुपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया है। यानी ग्रामीण विकास का कुल

बजट अब 66137 करोड़ रुपये का होगा। यह वृद्धि लगभग 6.3 फीसदी की है, जबकि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दरं 12.5 फीसदी रखने का प्रस्ताव है। इसका मतलब साफ है ग्रामीण विकास सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर के मुकाबले आधे हिस्से का धारक नहीं होगा। इसी तरह नरेगा के बजट में सिर्फ 2.5 फीसदी की बढ़ोतरी की गई है। जबकि पिछले वर्ष ही इस मद में 146 फीसदी की वृद्धि की गई थी। जबकि दूसरी तरफ देखें तो इस बजट में करों में जो कटौती की गई है वह ग्रामीण विकास के लिए प्रस्तावित धन से पांच गुणा ज्यादा है। इसके बावजूद कांग्रेस यह दावा करती है कि यह बजट आम आदमी का बजट है। कृषि विकास के मद में सिर्फ 900 करोड़ रुपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया है। इसका मतलब साफ है कि वर्ष 2004 से कृषि और आम आदमी को महत्व देने का जो राग अलापा जा रहा है वह महज दिखावा है। यही वित्त मंत्री जब यह दावा करते हैं कि उनकी नजर में खेती और स्टॉक मार्केट बराबर के महत्व रखते हैं।

अब जरा ढ़ाचागत क्षेत्र पर वित्तमंत्री की कथित दरियादिली की भी बात कर लें। इस बजट में उन्होंने सड़क क्षेत्र के लिए महज 13 फीसदी अतिरिक्त बजट का प्रावधान किया है, जबकि इसी मद में पिछले वर्ष वित्त मंत्रालय ने 23 फीसदी की बढ़ोतरी की थी। देश की लाइफ लाइन रेलवे के लिए 950 करोड़ रुपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया है, जो पिछले वर्ष के मुकाबले सिर्फ 6 फीसदी अधिक है, जबकि वर्ष 2009–10 में इस मद में 46.3 फीसदी की वृद्धि की गई थी। पिछले साल के बजट में यह दावा किया गया था कि शहरी ढ़ांचागत सुविधाओं के लिए 87 फीसदी अतिरिक्त कोष का प्रावधान किया जाएगा। वित्त मंत्रालय ने यह भी कहा था कि इंफ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस कॉरपोरेशन लिमिटेड अन्य बैंकों के साथ मिलकर एक लाख करोड़ रुपये तक की सहायता देंगे। लेकिन प्रणव मुखर्जी के भाषण से ही यह पता चलता है कि आईआईएफसीएल ने महज 12000 करोड रुपये का ही भुगतान किया और अगले तीन साल में 25000 करोड़ रुपये जारी करेगा। वित्त मंत्रालय एक साल कुछ और दूसरे साल कुछ और कहने का साहस कैसे कर सकता है। शायद उन्हें यह लगता है कि उनकी बातों की जांच करने का समय विश्लेषकों या अर्थशास्त्रियों को नहीं है। वित्त मंत्री का यह बयान कि 1,72,552 करोड़ रुपये का जो प्रावधान उन्होंने जो ढ़ाचागत क्षेत्र के लिए किया है, वह कुल नियोजित बजट का 40 फीसदी से अधिक है, झूठ है। उन्होंने चालाकी बरतते हुए इस वर्ष के लिए कोई तुलनात्मक आंकड़ा ही प्रस्तुत नहीं किया। उसके बावजूद अर्थशास्त्री उनकी वाहवाही में लगे हैं।

आम आदमी को महत्व देने का जो राग अलापा जा रहा है वह महज दिखावा है। यही वित्त मंत्री जब यह दावा करते हैं कि उनकी नजर में खेती और स्टॉक मार्केट बराबर के महत्व रखते हैं।

यह घाटे में कमी का रहस्य क्या है! वित्तमंत्री ने साफ तौर पर यह रास्ता चुना है कि इस वर्ष अतिरिक्त खर्च ही नहीं करेंगे। जो एक तरह से सही भी है। लेकिन उसे जनता को बताने के बजाए तथ्य को जनता से छुपा रहे हैं। वे इसके उलट अलग बात करते हैं। वर्ष 2010–11 में आय बढ़ेगी, लेकिन व्यय पर लगाम रहेगा। वर्ष 2008–09 के मुकाबले वर्ष 2009–10 में गैर नियोजित खर्चे में 37 फीसदी की बढ़ोतरी हुई थी, पर वर्ष 2010–11 में पिछले वर्ष के मुकाबले सिर्फ छह फीसदी खर्च ही बढ़ेगा। अगर वित्तमंत्री सकल घरेलू उत्पाद में 12.5 फीसदी की बढ़ोतरी के आकलन के अनुपात में गैर नियोजित व्यय में भी वृद्धि करते तो उन्हें 1,99,000 करोड़ रुपये से लेकर 5,80,000 करोड़ रुपये तक का घाटा उठाना पड़ता और राजस्व घाटा 8.4 फीसदी तक बढ़ जाता।

वित्त मंत्री का यह दावा कितना बचकाना लगता है कि इस बजट से मध्यआयवर्ग के लोगों की जेब में अतिरिक्त पैसा आएगा। कोई भी अर्थशास्त्री जानता है कि गैरनियोजित खर्चे में बढ़ोतरी ही सिस्टम में सीधा अतिरिक्त तरलता का संचार करती है। यदि गैर नियोजित व्यय में इस वर्ष कोई बड़ी वृद्धि नहीं की गई है तो कहां से उपभोक्ताओं के पास पैसा आएगा। वित्त मंत्री ने कहा कि उन्होंने करों में कटौती कर उपभोक्ताओं की जेब में पैसा बढ़ाया है, यह कहानी का सिर्फ एक पहलू है। वास्तविकता यह है कि करों में कटौती के बावजूद उपभोक्ताओं के पास पिछले वर्ष के मुकाबले 1,80,000 करोड़ रुपये कम आएंगे।

इस बजट में इस तथ्य को छुपाया गया है कि पिछले वर्ष गैर नियोजित व्यय में वृद्धि का प्रमुख कारण छठे वेतन आयोग की सिफारिशें थीं। लोगों को वेतन के रूप में अतिरिक्त पैसे मिले और इससे सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर बरकरार रही। पर इस वर्ष यह लाभ नहीं मिलेगा। महंगाई ने लोगों की अतिरिक्त कमाई को सोंख लिया है। लोगों के पास मौजूदा खर्च को संभालने का ही अवसर नहीं होगा तो अतिरिक्त खर्च कहां से करेंगे। इसलिए मांग बढ़ने की संभावना कम ही है। मोटे तौर पर देखे तो वित्तमंत्री ने कई तथ्यों को छुपाकर बजट को अच्छा दिखाने की कोशिश की है। पर वास्तविकता जल्दी ही सामने आएगी। ❑

कृषि और रोजगार की फिर हुई अनदेखी

सरकार का कहना है कि खाद्य पदार्थों की बर्बादी एक बड़ा संकट है, इसे संभालने के लिए विदेशी रीटेल कंपनियों को प्रोत्साहन देना बहुत जरूरी है, क्योंकि वे सप्लाई चेन बनाकर सामानों को सस्ता बेचती हैं, जिससे बर्बादी से बचा जा सकता है। इसी बहाने सरकार विदेशी कंपनियों को भारत का टिकट दे रही है। न तो इस बारे में अभी तक कोई शोध आया है और न ही कोई अध्ययन कि रीटेल कंपनियों को बढ़ावा देने से खाद्यान्न की बर्बादी से बचा जा सकता है। वास्तव में सरकार की यह सोच बन गई है कि विदेशी निवेश के बगैर किसी भी क्षेत्र में सुधार नहीं किया जा सकता।

■ **डॉ. अश्विनी महाजन**

पिछले कई वर्षों से सरकार कृषि की अनदेखी करती रही है। जहां 90 के दशक में योजना व्यय का 8 से 10 प्रतिशत कृषि पर खर्च किया जाता था, वह घटकर 2.4 प्रतिशत के आसपास पहुंच चुका है। हालांकि इस बजट में सरकार ने कृषि पर जुबानी चिंता जताई है, लेकिन आंकड़ों में यह चिंता केवल आम जनता को धोखा देती साबित हो रही है। पिछले वर्ष के बजट के संशोधित अनुमान के अनुसार कृषि पर खर्च कुल योजना व्यय का 2.37 प्रतिशत था, जो आगामी वर्ष में 2.34 प्रतिशत रखा गया है। दलहन और तिलहन उगाने के लिए और अधिक सहायता देने की बात हो रही है, लेकिन यह केवल कहने भर के लिए है। देश के सामने खाद्यान्न संकट की जो समस्या है, वह प्रत्यक्ष रूप से कृषि की अनदेखी के कारण है। यह सरकार की कृषि क्षेत्र से जुड़ी असंवेदनशीलता का परिचायक है।

दलहन और तिलहन उगाने के लिए और अधिक सहायता देने की बात हो रही है, लेकिन यह केवल कहने भर के लिए है। देश के सामने खाद्यान्न संकट की जो समस्या है, वह प्रत्यक्ष रूप से कृषि की अनदेखी के कारण है। यह सरकार की कृषि क्षेत्र से जुड़ी असंवेदनशीलता का परिचायक है।

कृषि क्षेत्र में चिंता का एक बड़ा ही हास्यास्पद नमूना सरकार ने इस बजट में दिया है। सरकार का कहना है कि खाद्य पदार्थों की बर्बादी एक बड़ा संकट है, इसे संभालने के लिए विदेशी रीटेल कंपनियों को प्रोत्साहन देना बहुत जरूरी है, क्योंकि वे सप्लाई चेन बनाकर सामानों को सस्ता बेचती हैं, जिससे बर्बादी से बचा जा सकता है। इसी बहाने सरकार विदेशी कंपनियों को भारत का टिकट दे रही है। न तो इस बारे में अभी तक कोई शोध आया है और न ही कोई अध्ययन कि रीटेल कंपनियों को बढ़ावा देने से खाद्यान्न की बर्बादी से बचा जा सकता है। वास्तव में सरकार की यह सोच बन गई है कि विदेशी निवेश के बगैर किसी भी क्षेत्र में सुधार नहीं किया जा सकता और रीटेल कंपनियों को न्यौता देने की बात इसी सोच का नतीजा है।

दूसरा संकट है राजकोषीय घाटे और उसके कारण मुद्रा स्फीति का।

पिछले बजट में राजकोषीय घाटा 6.8 प्रतिशत पहुंच गया था, हालांकि तब अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतें बहुत ज्यादा थी। तब राजकोषीय घाटे में बढ़ोतरी होना लाजिमी था, लेकिन अब तेल मूल्य पर काफी हद तक नीचे आ चुके हैं। बावजूद इसके वित्तीय घाटे में मामूली–सी कमी दिखाई देती है। 5.5 प्रतिशत का जो राजकोषीय घाटा दिखाया गया है, उसमें तेल कंपनियों के घाटे को नहीं जोड़ा गया है। दूसरी ओर यह भी देखने को आ रहा है कि पूंजीगत व्यय जो देश के विकास के लिए जरूरी है, में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो रही और खर्च में तमाम वृद्धि चालू खाते पर हो रही है। यानि जो खर्च बढ़े भी हैं, वे रेवेन्यू एकाउंट में हैं। कृषि पर खर्च मात्रात्मक रूप से ज्यादा है, लेकिन नियोजित खर्च का मात्र 2.34 प्रतिशत ही है। बजट घाटा कम इसलिए भी रखा गया है, क्योंकि प्रत्यक्ष करों से राजस्व बढ़ने की उम्मीद जताई जा रही है। करों के संबंध में जो एक बात ठीक दिख रही है, वह यह कि जीएसटी को एक वर्ष के लिए और टाल दिया गया है।

तीसरा मुद्दा है बेरोजगारी का है। बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है। नरेगा को जो विकल्प बनाया गया, वह अस्थाई समाधान है। स्थाई समाधान के लिए जरूरी है कि रोजगार के नए साधन मुहैया कराए जाएं। श्रमप्रधान तकनीकों को बढ़ावा दिया जाए, लेकिन सरकार ने इस दिशा मे भी कोई बड़े प्रावधान नहीं किए हैं। बल्कि इस बार के बजट में तो बेरोजगारी के मुद्दे को लगभग अछूता ही छोड़ दिया गया है।

किसी भी देश का आर्थिक विकास और वहां रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार के लिए संरचनात्मक ढांचे यानि इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार नितांत आवश्यक है। बिजली उत्पादन की क्षमता, सड़क निर्माण, एयरपोर्ट हो अथवा संचार के साधन, इन सभी में विकास जरूरी है। दुर्भाग्य से हमारे देश में इंफ्रास्ट्रक्चर अपेक्षित स्तर का

नहीं है। बिजली उत्पादन की क्षमता के विकास में हमारी उपलब्धि लक्ष्यों से आधी ही रह पाती है। पिछले लगभग पांच वर्षों से हमारा सड़क निर्माण भी लगभग रुका हुआ है। वर्ष 2002 से 2005 के बीच स्वर्णिम चतुर्भुज सहित 6300 किलो मीटर राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण हुआ। इसके अतिरिक्त उस समय 6200 कि.मी. राष्ट्रीय

बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है। नरेगा को जो विकल्प बनाया गया, वह अस्थाई समाधान है। स्थाई समाधान के लिए जरूरी है कि रोजगार के नए साधन मुहैया कराए जाएं। श्रमप्रधान तकनीकों को बढ़ावा दिया जाए, लेकिन सरकार ने इस दिशा में भी कोई बड़े प्रावधान नहीं किए हैं। बल्कि इस बार के बजट में तो बेरोजगारी के मुद्दे को लगभग अछूता ही छोड़ दिया गया है।

राजमार्गों की सड़क निर्माणाधीन थी। लेकिन उसके बाद राष्ट्रीय राजमार्ग योजना जैसे बंद सी हो गई। सरकार ने स्वयं माना कि वे 4 किलोमीटर प्रतिदिन की गति से ही राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण कर सके हैं। उधर ग्रामीण सड़क योजना भी धन के अभाव में आगे नहीं बढ़ पायी।

इसका कारण यह है कि पिछले कुछ समय से सरकार इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास से स्वयं को अलग करती जा रही थी और इसके विकास का सारा जिम्मा निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया था। जिसका असर यह हुआ कि जहां 1993–94 में सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 6 प्रतिशत इंफ्रास्ट्रक्चर निवेश पर खर्च होता था वह 2000–01 तक मात्र 5 प्रतिशत पर आ गया। इसमें से भी अधिकतर निवेश निजी क्षेत्र द्वारा किया गया। पिछले कुछ समय से इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के लिए निजी सार्वजनिक क्षेत्र की साझेदारी में काफी परियोजनाएं चल रहीं हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के बड़े लक्ष्यों और सरकार के पास धनाभाव के

चलते इसमें कोई बुराई भी दिखती नहीं है। लेकिन बड़ी संख्या में निजी सार्वजनिक क्षेत्र की साझेदारी में परियोजनाओं के बावजूद कुल घरेलू उत्पाद में इंफ्रास्ट्रक्चर में निवेश मात्र 5 प्रतिशत होना वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है।

इस बार बजट में सरकार ने स्वयं के लिए सड़क निर्माण के लिए 20 कि.मी. प्रतिदिन का लक्ष्य निर्धारित किया है और उसके लिए 17520 करोड़ रूपये आवंटित भी किए है। साथ ही साथ रेलवे के विस्तार एवं आधुनिकीकरण के लिए भी पहले से बेहतर आवंटन किया गया है। कुल योजना व्यय का 46 प्रतिशत हिस्सा इंफ्रास्ट्राक्चर के लिए दिया जाना वास्तव में सराहनीय कहा जा सकता है। यदि सरकार बजट प्रावधानों के अनुरूप बिजली उत्पादन, सड़क एवं रेल निर्माण और अन्य प्रकार के इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास में ध्यान लगाये तो इस वर्ष इसके विकास में खासा इजाफा हो सकता है। ❑

कृषि क्षेत्र की उपेक्षा

वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने इस बार के बजट में कृषि उत्पादन बढ़ाने का महती दायित्व मानसून पर डाल दिया है। पूर्ववर्ती वित्त मंत्रियों की तरह, खास तौर पर 1991 में वित्त मंत्री रहे मनमोहन सिंह की तरह प्रणब मुखर्जी ने किसानों की प्रशंसा करते हुए खेती को मजबूत करने पर तो जोर दिया है, लेकिन खाद्यान्न उत्पादन कैसे बढ़ाया जाए इसकी कोई निश्चित योजना नहीं बनाई है। न ही वित्तीय स्तर पर परेशान किसानों को मौजूदा आर्थिक कठिनाई से उबारने के लिए किसी प्रोत्साहन की गारंटी दी गई है।

जहां तक कृषि क्षेत्र का संबंध है, साल 2010 के बजट से मुझे कोइ खास उम्मीद थी भी नहीं। क्योंकि मुझे पता है कि हमारे नीति–नियंताओं का जुड़ाव आज इस बात से कम रह गया है कि कृषि क्षेत्र में क्या गलत हो रहा है। लेकिन हमारे किसानों ने 2009 के खरीफ सीजन में जिस तरह सूखा, मुद्रास्फीति, महंगाई और आर्थिक मंदी का सामना किया, उसमें वित्त मंत्री यदि किसानों के लिए छोटी प्रोत्साहन योजना पैकेज की घोषणा करते तो उनका मनोबल बढ़ता। मगर आर्थिक मंदी से निबटने के लिए जिस तरह उद्योग जगत को बड़ी धनराशि बतौर बेलआउट पैकेज के दी गई, उस अनुपात में किसानों को कुछ भी नहीं दिया गया। इस समय किसानों को आर्थिक प्रोत्साहन की जरूरत है। उद्योगों को दिए जा रहे बेलआउट पैकेज में कटौती करके यह राशि जरूरतमंद किसानों को देनी चाहिए थी। मगर यह काम मजबूत राजनीतिक इच्छा शक्ति के बिना संभव नहीं है।

देश के कृषि क्षेत्र को काफी दिनों से जिसका इंतजार था, उसकी घोषणा इस बार प्रणब मुखर्जी ने बहुत चतुराई से चार सूत्रीय नीति कार्यक्रम के रूप में की। जिसका अभिप्राय तो अच्छा है, मगर सामग्री कमजोर है। उम्मीद की जा रही थी कि कृषि क्षेत्र में 4 फीसदी विकास दर को हासिल करने के लिए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार इस बार कोई ठोस संकेत देने पर विचार करेगी। फिलहाल देश में कृषि विकास दर बेहद न्यूनतम 0. 2 प्रतिशत है, जो हमारी अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ा अवरोधक है।

किसानों को दिए गए 50 हजार करोड़ के ऋण पैकेज के अलावा (कुल 3.75 लाख करोड़ रुपये ऋण लिए गए) 2 फीसदी बतौर सब्सिडी (इसमें पिछले साल दिए गए 1 प्रतिशत शामिल है) उन्हें दिए गए, जिन्होंने वक्त पर कृषि ऋण का भुगतान कर दिया। यह चार सूत्रीय घोषणा उनके लिए नाममात्र से ज्यादा मायने नहीं रखता। इसी तरह शुष्क जमीन वाले देश के 60 हजार गांवों में दलहन और तिलहन के उत्पादन को पुनर्जीवित करने के लिए जो 300 करोड़ रुपये देने की बात की गई है, वह गलत नीति है।

गौरतलब है कि दलहन और तिलहन के उत्पादन में गिरावट किसानों की अक्षमता के कारण नहीं, बल्कि सरकार की नीतियों के कारण आई है। पिछले सालों में सरकार ने आयात शुल्क में जो छूट दी, उसके कारण बड़े पैमाने पर विदेशों से सस्ते खाद्य तेल का आयात हुआ। आयात शुल्क में कटौती के कारण पिछले कुछ सालों में ऐसी स्थिति बन गई कि भारत दुनिया में खाद्य तेलों का दूसरा सबसे बड़ा आयातक देश बन गया। दलहन और तिलहन का उत्पादन तब तक नहीं बढ़ाया जा सकता, जब तक सरकार आयात शुल्क की कटौती वापिस नहीं लेती।

विश्व व्यापार संगठन के नियमों के तहत भारत तिलहन के आयात पर 300 फीसदी तक शुल्क लगा सकता है, जिसे घटाकर शून्य तक लाया जा सकता है। इसी तरह दालों के लिए आयात शुल्क शून्य है। जब तक दालों की स्थिति सामान्य नहीं होती तब तक तो ठीक है, मगर भारतीय किसान विदेशों से सस्ती दर पर आयात की जाने वाली दालों की कीमतों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। ऐसी सूरत में सस्ती दरों पर विदेशों से दालें आयात करने का मतलब दरअसल वहां से भारत में बेरोजगारी आयात करने जैसा होगा।

पूर्वोत्तर राज्यों में हरित क्रांति के लिए 400 करोड़ रुपये देने की बात की गई है, यह भी गलत रणनीति है। क्योंकि हरित क्रांति की प्रौद्योगिकी ने पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश की जमीन की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर दिया है। देश ने हरित क्रांति के पूर्व के अनुभवों से आज तक कोई सबक नहीं लिया।

– देविन्दर शर्मा

महंगाई और गरीबी बढ़ाने वाला बजट

देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ किसान और कृषि की हालत बद से बदतर होती जा रही है। गृह मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार 1996 से 2007 के बीच दो लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या कर ली, जो आगे भी जारी है। बजट में इस पर कोई चिंता व्यक्त नहीं की गई। उलटे खाद के अनुदान में तीन हजार करोड़ रुपए की कमी करने की बात की गई है।

■ बलबीर पुंज

आंकड़ों का मायाजाल अलग रखें तो वित्त मंत्री प्रणब दा द्वारा प्रस्तुत बजट का भारत के विकास और आम आदमी के लिए क्या अर्थ है? आम आदमी आज आकाश छूती महंगाई से त्रस्त है। बजट का इस समस्या पर क्या असर होगा? महंगाई और आवश्यक वस्तुओं की किल्लत का जो कटु अनुभव हमें हो रहा है, वह क्या पिछले बजट से जन्मा था? या इसके लिए भ्रष्ट मंत्री, रिश्वतखोर नौकरशाह और कालाबाजारी व्यापारियों का गठजोड़ जिम्मेदार है?

वास्तविकता यही है कि पिछले वर्ष आवश्यक वस्तुओं की भारी सट्टेबाजी हुई और कागज पर जितने भी सौदे हुए, उसमें वास्तविक लेनदेन एक प्रतिशत से भी कम हुआ। कृत्रिम अभाव पैदा कर वस्तुओं की कीमतें बढ़ाई गई और इन सबमें करीब साढ़े चार लाख करोड़ का वारा–न्यारा किया गया। उदाहरण के लिए चावल का निर्यात बंद कर दिया गया। इससे वैश्विक बाजार में चावल की कीमतों में 350 से 1000 डॉलर प्रति मीट्रिक टन का भारी उछाल आया। अपने यहां तो कहा गया कि हमने चावल का निर्यात बंद कर गरीबों के लिए चावल सस्ता कर दिया। फिर मानवीय आधार पर विपन्न अफ्रीकी देशों को चावल निर्यात करने का फैसला किया गया। केन्द्र सरकार ने दो रुपए किलो की दर से चावल का निर्यात अफ्रीकी देशों को करने का दावा किया, किंतु हकीकत यह है कि मानवीय आधार पर दी जाने वाली यह राहत पीड़ित देशों को न भेजकर अन्यत्र बढ़ी दरों पर बेची गई। इससे भ्रष्ट मंत्रियों और व्यापारियों ने 2500 करोड़ रुपए की काली कमाई की।

संप्रग द्वितीय के काल में आम आदमी के हितों को ताक पर रखकर आयात–निर्यात के बहाने हजारों करोड़ रुपयों का वारा न्यारा किया गया। वर्ष 2007–08 में गेहूँ का समर्थन मूल्य 8.50 रुपए था, जबकि विदेशों से प्रति किलो 14.82 रुपए की दर से आयात किया गया। अर्थात् भारत के किसानों की तुलना में विदेशी किसानों को प्रति क्विंटल 632 रुपए का अधिक भुगतान किया गया।

निर्यात में भी सरकार ने वारे–न्यारे किए। वर्ष 2007 में 10.01 रुपए और 2008.09 में 13.02 रुपए प्रति किलो की दर से निर्यात किया गया। वर्ष 2009–10 में जब अपने देश में आटा बीस रुपए प्रति किलो की दर से बिक रहा था, तब सरकार ने 12.51 रुपए की दर से गेहूं का निर्यात किया। इसी तरह चीनी की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि बाजार प्रेरित नहीं थी। वर्ष 2008–09 में गन्ने की सामान्य उपज होने के बावजूद सरकार ने 48 लाख टन चीनी

निर्यात करने का आदेश जारी कर दिया। यह निर्यात 12.50 रुपए प्रति किलो की दर से किया गया। निर्यातकों को प्रति किलो 1.44 रुपए की सब्सिडी दी गई।

वर्ष 2007–2008 और 2009 में देश में 573 लाख टन चीनी की उत्पादन हुआ। चीनी की उपलब्धता उपभोग से अधिक थी। किंतु निर्यात के कारण जब घरेलू बाजार में चीनी की किल्लत पैदा हुई तो सरकार ने चीनी आयात का फैसला किया। इस बार चीनी का आयात 42 रुपए प्रति किलो की दर से किया गया। स्टाक एक्सचेंज में लिस्टेड 33 चीनी मिलों का अक्टूबर से दिसंबर 2008 के बीच लाभांश 30 करोड़ रुपए था। वह अक्टूबर–दिसंबर 2009 में 901 करोड़ रुपए हो गया। यह 12.50 को 42 में बदलने से ही संभव हुआ।

गरीब की थाली में प्रोटीन के नाम पर दाल ही एकमात्र संबल है। किंतु आम आदमी की हितैषी सरकार ने वह भी छीन लिया। दाल की मांग अधिक होने के कारण दाल की कीमतें बढ़ीं, यह एक पक्ष है। किंतु सत्य यह है कि एक साथ सरकार दालों का अधिक दामों पर आयात तो कम दामों पर निर्यात कर रही थी। व्यापारियों ने बंदरगाह पर दालों की बोरियां पड़ी रहने दीं, ताकि घरेलू बाजार में दालों की कीमतें और बढ़ें।

विश्व भूख सूचकांक में भारत का स्थान इथियोपिया से भी नीचे है। मानव विकास सूचकांक में भारत का स्थान 134वें स्थान पर है। इस देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ किसान और कृषि की हालत बद से बदतर होती जा रही है। गृह मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार 1996 से 2007 के बीच दो लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या कर ली, जो आगे भी जारी है। बजट में इस पर कोई चिंता व्यक्त नहीं की गई। उलटे खाद के अनुदान में तीन हजार करोड़ रुपए की कमी करने की बात की गई है।

दूसरी हरित क्रांति लाने के नाम पर जिन राज्यों का चयन किया गया है, वे पहले से ही तंगहाल हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में हरित क्रांति लाने के लिए 400 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है, इतने से तो प्रत्येक राज्य को 67 करोड़ रुपए भी नहीं आएंगे।

भारत सरकार अभी 40 लाख करोड़ रुपए के कर्ज में डूबी है और यह कर्जखोरी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वर्तमान में 29 लाख करोड़ रुपए के घरेलू कर्ज के अतिरिक्त 1 लाख 632 हजार करोड़ रुपए का विदेशी कर्ज है। 10 लाख करोड़ रुपए की अन्य देनदारियां अलग है। कर्ज के बोझ के कारण वर्ष 2010–11 में सरकार को 2 लाख 48 हजार 664 करोड़ रुपए ब्याज के रूप में चुकाने पड़ेंगे। यह धनराशि स्वाभाविक तौर पर आम आदमी से ही वसूली जाएगी। कुल मिलाकर यह बजट महंगाई को हवा देने वाला है, जिसमें गरीबी और किसानों के लिए कोई ठोस प्रावधान नहीं है। समृद्ध सुरक्षित व भय, भूख और भ्रष्टाचार से मुक्त भारत का निर्माण तभी संभव है, जब अंतिम पायदान पर बैठा व्यक्ति तक विकास का फल पहुंचे। इसके लिए लोकलुभावन नारों व अवसरवादी राजनीति का त्याग ही एकमात्र मार्ग है। बजट इस दृष्टि से निराशा ही पैदा करता है। ❑

गरीब की थाली में प्रोटीन के नाम पर दाल ही एकमात्र संबल है। किंतु आम आदमी की हितैषी सरकार ने वह भी छीन लिया. . .किंतु सत्य यह है कि एक साथ सरकार दालों का अधिक दामों पर आयात तो कम दामों पर निर्यात कर रही थी।

कृषि का अमेरिकी मॉडल

हम आंख मूंदकर अमेरिकी कृषि प्रौद्योगिकी को अपना रहे हैं, नतीजे में भारतीय कृषि को भयानक संकट झेलना पड़ रहा है। अगर कृषि अनुसंधान और शिक्षा का अमेरिकी माडल इतना ही बेहतर है तो खेती बर्बादी के कगार पर क्यों है? किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं और अन्नदाता भूखा क्यों है? क्या इसका यह मतलब नहीं है कि कोई भयावह गड़बड़ी हो रही है? एक राष्ट्र के रूप में हमें इसकी पड़ताल करनी चाहिए और पलटकर पीछे देखना चाहिए।

■ **देविन्दर शर्मा**

कृषि का अमेरिकी माडल रस्साकसी शुरू हो गई है। वन एवं पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने बीटी बैगन पर फैसला टाल कर बर्र के छत्ते में हाथ डाल दिया है। अब तक उनके कम से कम तीन वरिष्ठ सहयोगी शरद पवार, पृथ्वीराज चव्हाण और कपिल सिब्बल इस फैसले के विरोध में खड़े हो चुके हैं। यह जताने की कोशिश हो रही है कि बीटी बैगन को ठंडे बस्ते में डालने से भारत की खाद्य सुरक्षा को आघात लगा है।

हमें यह भी बताया जा रहा है कि विज्ञान का समाज से कोई सरोकार नहीं होता और हर सूरत में विज्ञान ही श्रेष्ठ है, चाहे यह दोषपूर्ण और नुकसानदायक क्यों न हो। नियामक इकाई जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी (जीईएसी) द्वारा बीटी बैगन को हरी झंडी देने में किए गए तमाम भ्रष्टाचार और वैज्ञानिक छल–कपट की अनदेखी करते हुए ये मंत्री बीटी बैगन की व्यावसायिक खेती को अनुमति देना चाहते हैं। यह मिथ्या धारणा कि विज्ञान किसानों के लिए हमेशा फायदेमंद है, पहले ही खेतों को लहूलुहान कर चुकी है।

पिछले 15 साल में करीब दो लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं। अगर विकल्प प्रदान किया जाए तो 45 प्रतिशत से अधिक किसान खेती को छोड़ देना चाहते हैं। पहले ही, रासायनिक पदार्थों, जैसे खाद, कीटनाशक और हाइब्रिड बीजों ने मिट्टी की सेहत खराब कर दी है और भूजल को सोख लिया है। किंतु इससे पहले मैं यह बताऊं कि हरित क्रांति ने कृषि को कैसे तबाह किया है फिलहाल यह समझना जरूरी है कि कृषि–व्यापार उद्योग ने किस तरह हमारी सोच को बदल दिया है। किसी न किसी तरह हमारे

हमें बताया गया है कि कृषि घटिया और पिछड़ा धंधा है और अकुशल लोगों का काम है। अमेरिकी तर्ज पर हमारे कृषि विश्वविद्यालयों में यही सिखाया जाता है। कृषि विश्वविद्यालयों में यह भी सिखाया जाता है कि अगर आप भारतीय कृषि में सुधार लाना चाहते हैं तो अमेरिकी कृषि माडल अपनाना होगा।

हमने सबसे बड़ी गलती यह की कि परंपरागत खेती और किसानों से सीखने की कोशिश नहीं की। कृषि संकट के तमाम हल उनके पास हैं। हम यह मानकर उन्हें दरकिनार कर देते हैं कि उन्हें कुछ पता ही नहीं। नतीजा यह है कि किसान साल दर साल परंपरागत ज्ञान से विमुख होते जा रहे हैं। हम सब अंधेरे में भटक गए हैं। कृषि वैज्ञानिक नहीं जानते कि बंजर जमीन में कैसे उर्वरता लाई जाए।

दिमाग में यह बात बैठा दी है कि प्रौद्योगिकी हमेशा मुक्तिदाता होती है। यह देखना अहम है कि वर्तमान संकट को बढ़ाने में हमारी सोच में बदलाव का कितना बड़ा हाथ है।

बेहद चालाकी से यूएस एजेंसी फार इंटरनेशनल डेवलपमेंट ने अमेरिका के लैंड ग्रांट माडल के आधार पर भारत में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की है। यह भारत की आवश्यकताओं के बजाए मुख्यतः अमेरिका की इच्छा के अनुरूप स्थापित किए गए हैं। हमें बताया गया है कि कृषि घटिया और पिछड़ा धंधा है और अकुशल लोगों का काम है। अमेरिकी तर्ज पर हमारे कृषि विश्वविद्यालयों में यही सिखाया जाता है। कृषि विश्वविद्यालयों में यह भी सिखाया जाता है कि अगर आप भारतीय कृषि में सुधार लाना चाहते हैं तो अमेरिकी कृषि माडल अपनाना होगा।

हम आंख मूंदकर अमेरिकी कृषि प्रौद्योगिकी को अपना रहे हैं, नतीजे में भारतीय कृषि को भयानक संकट झेलना पड़ रहा है। अगर कृषि अनुसंधान और शिक्षा का अमेरिकी माडल इतना ही बेहतर है तो खेती बर्बादी के कगार पर क्यों है? किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं और अन्नदाता भूखा क्यों है? क्या इसका यह मतलब नहीं है कि कोई भयावह गड़बड़ी हो रही है? एक राष्ट्र के रूप में हमें इसकी पड़ताल करनी चाहिए और पलटकर पीछे देखना चाहिए।

कृषि वैज्ञानिकों को यह स्वीकार करना चाहिए कि जिस प्रौद्योगिकी की वे वकालत कर रहे थे, उसने धरती को बंजर बना दिया है और धीरे–धीरे यह रेगिस्तान में तब्दील होती जा रही है। उन्हें भारत की परखी हुई प्रौद्योगिकी पर भरोसा रखना चाहिए, जिन पर आयातित सोच से आघात पहुंचा है। अब लैब से जमीन प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

किसान जानते हैं कि उन्होंने धरती माता को लूट लिया है और वे अधिक समय तक इससे उपज हासिल नहीं कर सकते। कृषि वैज्ञानिकों को यह स्वीकार करना चाहिए कि जिस प्रौद्योगिकी की वे वकालत कर रहे थे, उसने धरती को बंजर बना दिया है और धीरे–धीरे यह रेगिस्तान में तब्दील होती जा रही है। उन्हें भारत की परखी हुई प्रौद्योगिकी पर भरोसा रखना चाहिए, जिन पर आयातित सोच से आघात पहुंचा है। अब लैब से जमीन प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

हमने सबसे बड़ी गलती यह की कि परंपरागत खेती और किसानों से सीखने की कोशिश नहीं की। कृषि संकट के तमाम हल उनके पास हैं। हम यह मानकर

उन्हें दरकिनार कर देते हैं कि उन्हें कुछ पता ही नहीं। नतीजा यह है कि किसान साल दर साल परंपरागत ज्ञान से विमुख होते जा रहे हैं।

हम सब अंधेरे में भटक गए हैं। कृषि वैज्ञानिक नहीं जानते कि बंजर जमीन में कैसे उर्वरता लाई जाए। कृषि को बचाने के सरल उपाय के रूप में वे परदेसी प्रौद्योगिकी के आयात पर निर्भर रहना चाहते हैं और इसीलिए बीटी बैगन पर जोर लगा रहे हैं। एक बार बीटी बैगन को अनुमति मिल जाती है तो यह अनेक जीएम फसलों की बाढ़ ला देगा। इस प्रकार की फसलें, चाहे इनकी आवश्यकता न हो और इनसे उत्पादन भी न बढ़े, कम से कम कृषि विश्वविद्यालयों का तो कल्याण कर ही देंगी। तब कोई भी यह नहीं कह पाएगा कि ये विश्वविद्यालय हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे।

पिछले 40–50 साल से हमें बताया गया है कि जितना रासायनिक खाद डालोगे उपज में उतनी ही बढ़ोतरी होगी।

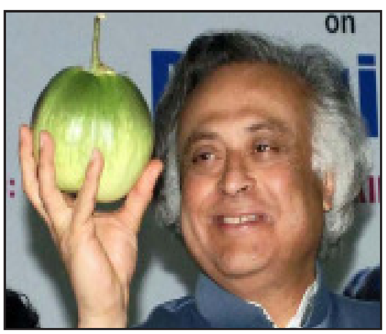

कृषि वैज्ञानिक हायतौबा मचाना शुरू कर देंगे कि इससे राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। यही हाल बीटी बैगन का है। यह भी कृषि–व्यवसाय उद्योग की पैदावार है। इसीलिए राजनेताओं और कृषि वैज्ञानिकों का इसे जबरदस्त समर्थन हासिल है।

पिछले 40–50 साल से हमें बताया गया है कि जितना रासायनिक खाद डालोगे उपज में उतनी ही बढ़ोतरी होगी। यह एक गलत सोच है और इसने हमारी आशंका से अधिक नुकसान पहुंचाया है। अध्ययन से पता चलता है कि भारत के जिन जिलों में खाद की खपत अधिक है, उनमें उत्पादकता उतनी ही कम है। दूसरी तरफ, जिन जिलों में अधिक उत्पादकता है, वहां खाद की खपत कम है।

यह एक गलत सोच है और इसने हमारी आशंका से अधिक नुकसान पहुंचाया है। अध्ययन से पता चलता है कि भारत के जिन जिलों में खाद की खपत अधिक है, उनमें उत्पादकता उतनी ही कम है। दूसरी तरफ, जिन जिलों में अधिक उत्पादकता है, वहां खाद की खपत कम है। देश में प्रति हेक्टेयर सर्वाधिक उपज वाला जिला केरल का वायानाद है। जबकि खाद की खपत में इसका स्थान 600 जिलों में से 315वां है। इससे क्या आपको नहीं लगता कि खाद की खपत घटनी चाहिए। किंतु जैसे ही आप यह बात कहेंगे, कृषि वैज्ञानिक हायतौबा मचाना शुरू कर देंगे कि इससे राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। यही हाल बीटी बैगन का है। यह भी कृषि–व्यवसाय उद्योग की पैदावार है। इसीलिए राजनेताओं और कृषि वैज्ञानिकों का इसे जबरदस्त समर्थन हासिल है। हमें इस पर ध्यान देना चाहिए कि औद्योगिक उत्पादों से नुकसान अधिक होता है। अगर आप सही फैसला नहीं लेते तो दूसरो को दोष न देना। हम सबको इसलिए परेशानी उठानी पड़ सकती है कि यह महत्वपूर्ण और नाजुक फैसला वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं के हाथ में है। ❑

पिछड़ा क्यों है भारत?

भारत ने बड़े–बड़े वैज्ञानिक पैदा किये रामानुजम, जगदीश चन्द्र बोस, चन्द्र शेखर वेंकट रामन, मेघनाद साहा और सत्येन्द्र नाथ बोस। इन वैज्ञानिकों ने भारत में ही काम किया था, और दुनिया में भारत का गौरव बढ़ाया था। लेकिन आजादी के बाद हम एक भी अंतरराष्ट्रीय स्तर का वैज्ञानिक देश में पैदा नहीं कर सके? इस बारे में क्या कभी हमने सोचा है?

■ निरंकार सिंह

विज्ञान और तकनीक की नई–नई खोजों और आविष्कारों के बिना किसी भी देश की समृद्धि और खुशहाली संभव नहीं है। लेकिन इस मामले में भारत काफी पिछड़ा हुआ है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी कुछ क्षेत्रों में भारतीय विज्ञान के पिछड़ेपन को दुर्भाग्यपूर्ण बताया है। विज्ञान कांग्रेस के ताजा अधिवेशन में उन्होंने विदेशों में काम कर रहे भारतीय वैज्ञानिकों से देश लौटने की भी अपील की है। पर हमारे वैज्ञानिक विदेश जाते ही क्यों हैं? इसका जवाब पिछले साल रसायन में संयुक्त रूप से नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाले भारतीय मूल के वैज्ञानिक वेंकट रमन रामकृणन ने दिया था। उन्होंने कहा था कि भारतीय वैज्ञानिकों को लालफीताशाही से मुक्ति और अधिक स्वायत्तता की जरूरत है। देश के वैज्ञानिक संस्थान और राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं जब तक नौकरशाही के चंगुल और भाई–भतीजावाद से ग्रस्त रहेंगी तब तक भारत में नये विज्ञान और तकनीक के विकास का रास्ता नहीं खुल सकता है। देश में वैज्ञानिक खोज और आविष्कार के लिए उपयुक्त माहौल बनाना सरकार और खासकर प्रधानमंत्री का ही काम है कि वह देखें कि उनके वैज्ञानिक संस्थानों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है?

देश के वैज्ञानिक संस्थान और राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं जब तक नौकरशाही के चंगुल और भाई–भतीजावाद से ग्रस्त रहेंगी तब तक भारत में नये विज्ञान और तकनीक के विकास का रास्ता नहीं खुल सकता है। देश में वैज्ञानिक खोज और आविष्कार के लिए उपयुक्त माहौल बनाना सरकार और खासकर प्रधानमंत्री का ही काम है कि वह देखें कि उनके वैज्ञानिक संस्थानों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है?

दौलत आसमान से नहीं टपकती इसलिए देश की आजादी के बाद नेहरू और भामा ने कहा था कि हम विज्ञान और तकनीक के माध्यम से अपना खाद्यान्न और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाकर देश को आत्मनिर्भर बना सकते हैं। इन दोनों व्यक्तियों के प्रयास से आज हमारे पास तकनीक और अनुसंधान के विकास के लिए आधारभूत ढांचा तैयार है। अंतरिक्ष,

परमाणु मिसाइल के क्षेत्र में कुछ हमारी उपलब्धियां भी हैं। लेकिन दुनिया को बताने लायक हमने कोई नई खोज एवं आविष्कार नहीं किया है। वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या के हिसाब से भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है। लेकिन सारा का सारा वैज्ञानिक साहित्य पश्चिमी देश के वैज्ञानिकों के कार्यों से भरा पड़ा है। उसमें किसी भारतीय का नाम नहीं मिलता है। अपने देश में आज कोई रामन, खुराना क्यों नहीं हैं? इतने सारे वैज्ञानिक संस्थानों में लगे हुए ढेरों वैज्ञानिक किस उहापोह में है। वे कुछ करते हैं उसे मान्यता नहीं मिलती या वे कुछ कर ही नहीं रहे हैं? क्या हमारे देश में वैज्ञानिक प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं है? क्या यह हालत काफी समय से है? दरअसल सात आठ दशक पहले ऐसा नहीं था। ब्रिटिश राज्य में तकलीफें कम नहीं थी। परिस्थितियां एकदम प्रतिकूल थीं। इसके बावजूद भारत ने बड़े–बड़े वैज्ञानिक पैदा किये रामानुजम, जगदीश चन्द्र बोस, चन्द्र शेखर वेंकट रामन, मेघनाद साहा और सत्येन्द्र नाथ बोस। इन वैज्ञानिकों ने भारत में ही काम किया था, और दुनिया में भारत का गौरव बढ़ाया था। लेकिन आजादी के बाद हम एक भी अंतरराष्ट्रीय स्तर का वैज्ञानिक देश में पैदा नहीं कर सके? इस बारे में क्या कभी हमने सोचा है?

दुनिया में अब वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान आर्थिक स्रोत के उपकरण बन गये हैं। किसी भी देश की वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता उसकी आर्थिक प्रगति का पैमाना बन चुकी है। 'तकनीकी ज्ञान' अब व्यापार के हथियार बन चुके हैं। इसलिए विज्ञान और तकनीक के विकास के बिना अब किसी देश की प्रगति नहीं हो सकती है। अब सवाल इस बात का है कि क्या हमारी आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रणाली में कोई ऐसी खामी है जो भारतीय भूमि पर विज्ञान और तकनीक को पल्लवित नहीं होने देती है? वास्तव में समाज ही वह ताकत है जो यह निश्चित कर सकती है कि विज्ञान और तकनीक को किसी दिशा में आगे बढ़ना है। आखिरकार विकास की प्रक्रिया समाज में ही तो शुरू होती है और जब एक बार विकास शुरू हो जाता है तो समाज भी बदलने लगता है तो फिर क्यों न हम अन्य देशों के साथ भारत की तुलना करके देखें कि विकास आखिर किस दिशा में हुआ है। अत्याधुनिक पश्चिम में जो आज विज्ञान और तकनीक के मामले में सबसे आगे हैं, वे इतना आगे कैसे बढ़ गये?

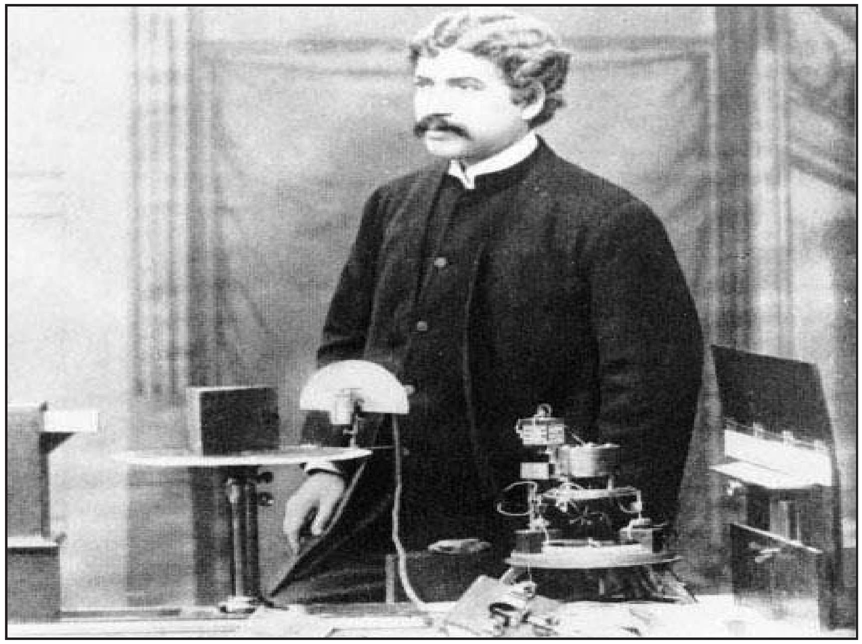

वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या के हिसाब से भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है। लेकिन सारा का सारा वैज्ञानिक साहित्य पश्चिमी देश के वैज्ञानिकों के कार्यों से भरा पड़ा है। उसमें किसी भारतीय का नाम नहीं मिलता है। अपने देश में आज कोई रामन, खुराना क्यों नहीं हैं? इतने सारे वैज्ञानिक संस्थानों में लगे हुए ढेरों वैज्ञानिक किस उहापोह में है।

अगर ध्यान से देखा जाए तो पश्चिमी देशों की परिस्थितियां इतनी अनुकूल थीं कि वैज्ञानिक विकास जरूरी हो गया था। आजादी की खुशहाली के आलम में लोग साहसिक यात्राओं पर निकलने लगे। विभिन्न जातियों, रंगों, स्वाभावों, रीति–रिवाजों और राजनीतिक प्रणालियों के लोगों से मेलजोल से दिमाग पूरी तरह काम करने लगा। उनका संपर्क दुनिया में कुछ नया खोजने वाले कारीगरों से हुआ। धीरे–धीरे पुराने विश्वास, आदतें और सामाजिक मूल्य बदलने लगे। विकास की एक नयी प्रक्रिया शुरू हो गयी। उत्पादन के तौर तरीकों और परिवहन के साधनों में सुधार की मांग तेजी से बढ़ती जा रही थी। उस समय युद्ध भी हो रहे थे। युद्ध के विजय के लिए जरूरी था कि नये से नये

साधनों का उपयोग। अत्याधुनिक चीजें हासिल करने का जोर उमड़ पड़ा और खोजबीन तेजी से होने लगी। किसी भी दूसरे देश ने वैज्ञानिक विकास के लिए ऐसी जमीन नहीं दी जैसी पश्चिम यूरोप और अमेरिका ने। इस नयी वैज्ञानिक संस्कृति के लाभ साफ दिखाई दे रहे थे। यही वजह है कि कुछ और देशों ने इसे अपना लिया। इसे सबसे पहले जापानियों ने अपनाया।

जापान ने यह जानने की कोशिश की कि आखिर पश्चिमी वैज्ञानिक क्रांति कैसे संभव हुयी। यह पता लगाने के बाद उसी आधार पर सरकार ने देश के पूरे सहयोग से अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की दिशा में कदम उठाये। उसने यह महसूस किया कि पश्चिम देशों की सैनिक शक्ति, पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी औद्योगिक तकनीक पर आधारित थी इसलिए उन्होंने जापानी इतिहास तथा हालात द्वारा अपेक्षित सुधार करके उन बातों को अपनाया। जापान ने विज्ञान को राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालने में असाधारण सूझ–बूझ दिखायी। जापान की ही तरह सोवियत संघ और अब रूस ने भी विज्ञान शासन और उद्योग की एकात्मता को आधार बनाया। योजनाबद्ध विकास के सिद्धांत को रूस ने लागू किया। नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नए–नए तौर तरीकें अपनाये। पुराने दकियानूसी समाज के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नये समाज की स्थापना पर जोर दिया गया। शिक्षा उत्पादन की जरूरतों के हिसाब से दी जाने लगी। कालेजों में पढ़ाई, डिजाइन तथा निर्माण तीनों तरह के काम होने लगे। सामाजिक अनुशासन, कड़ी मेहनत तथा समस्याओं से जूझने की विश्लेषणात्मक विधि पर जोर दिया जाने लगा। जो लोग इन गुणों को अपना लेते थे उनका सम्मान किया जाता था। इस तरह धीरे–धीरे नये मूल्य बन गये।

जापान और रूस के अनुभवों का चीन को बड़ा फायदा हुआ। चीनी इस बात में भी विश्वास करते हैं कि नयी आधुनिक तकनीकों को जितनी जल्दी हो सके अपना लेना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही जब तक नयी तकनीक न अपना ली जाये तब तक पुरानी तकनीक को प्रोत्साहन देते रहना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोग काम कर सके। आकार और आबादी के साथ–साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी चीन और भारत के बीच कई चीजें एक जैसी रहीं हैं लेकिन पचास साल पहले तक हमारे इस पड़ोसी देश में ऐसा कुछ नहीं था जिसे देखकर हमारे देश के लोगों को ईर्ष्या हो। इन पांच दशकों में चीन ने अपने सामानों के उत्पादन की लागत गुणवत्ता में इतना सुधार किया कि अमेरिका और जापान जैसी महाशक्तियां भी पशोपेश में पड़ गयी। अमेरिका

नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नए–नए तौर तरीकें अपनाये। पुराने दकियानूसी समाज के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नये समाज की स्थापना पर जोर दिया गया। शिक्षा उत्पादन की जरूरतों के हिसाब से दी जाने लगी। कालेजों में पढ़ाई, डिजाइन तथा निर्माण तीनों तरह के काम होने लगे। सामाजिक अनुशासन, कड़ी मेहनत तथा समस्याओं से जूझने की विश्लेषणात्मक विधि पर जोर दिया जाने लगा। जो लोग इन गुणों को अपना लेते थे उनका सम्मान किया जाता था। इस तरह धीरे–धीरे नये मूल्य बन गये।

डिपार्टमेंटल स्टोर यदि आज चीनी सामान से पटे पड़े हैं तो जापानी उद्योगपतियों में भी सस्ते चीनी श्रम के दोहन की होड़ लगी है। कम कीमत पर बेहतर सामान का एक अनूठा अर्थशास्त्र चीनी उद्योगपतियों को अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा में निर्णायक बढ़त दिला चुका है। भारत के लिए उन नीतियों पर नजर डालना फायदेमंद हो सकता है जिन्होंने चीन के आर्थिक चमत्कार को संभव बनाया है। आबादी नियंत्रण, शिक्षा प्रसार, आधारभूत विकास के साथ–साथ आर्थिक और प्रशासनिक सुधार ही चीन के विकास के माध्यम बने हैं। चीन में पिछले एक दशक में कुल जितनी पूंजी का निर्माण हुआ है उसमें विदेशी निवेश की भागीदारी मुश्किल से आठ प्रतिशत है। इस प्रकार चीन अपने बलबूते पर आत्मनिर्भर हुआ है।

इन बातों को इतना विस्तार से इसलिए बताया गया है कि हमने इन देशों के तरीके नहीं अपनाये। हालांकि मूल समस्यायें, गरीबी, निरक्षरता तथा परंपरायें इन देशों में जैसी थी वैसी ही हमारे देश में भी हैं। लेकिन भारतीय जाति व्यवस्था और ब्रिटिश शासन से ये समस्याएं और जटिल हो गयी हैं। लेकिन पिछले 50 साल में चीन ने जो कुछ कर दिखाया उससे लगता है कि ऐसा कुछ नहीं है जो संभव न हो। लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद हमने क्या विज्ञान को वैज्ञानिक रूप में विकसित किया है? आज देश के 900 से अधिक वैज्ञानिक संस्थानों, विश्व–विद्यालयों में विज्ञान और तकनीक के अनुसंधान का काम होता है लेकिन फिर भी दुनिया के विज्ञान साहित्य में हमारा नामोनिशान नहीं है और तकनीक के लिए हम दूसरे देशों पर निर्भर हैं जिसकी देश को भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। आज बीस हजार से भी अधिक तकनीकी समझौते विदेशी कंपनियों से तकनीकी सहयोग के ही हैं। टूथपेस्ट, बूट पालिश, च्युंइगम, रंग–रोगन और ताबूत बनाने तक की तकनीक हम विकसित नहीं कर सके हैं। हमने किसी भी काम में सार्वजनिक भागीदारी को प्रोत्साहन नहीं दिया। बांध बने, सड़कें बनी पर चीन की तरह ज्यादा से ज्यादा लोगों को इनसे हमने नहीं जोड़ा। इसके विपरीत हमने चुनाव जीतने और समर्थन प्राप्त करने के लिए जातिवाद, गरीबी और एक–दूसरे पर कीचड़ उछालने का काम किया। हमने जनशिक्षा के लिए भी कोई ठोस कदम नहीं उठाये। जो शिक्षा हम दे रहे है उसका भी माध्यम अपनी मातृभाषा को नहीं बनाया। क्या हमने अपने छात्रों से समस्या सुलझाने की योग्यता पैदा करने के लिए अपनी शिक्षा पद्धति में परिवर्तन किये? क्या हमने अपने विद्यार्थियों को यह सिखा पाये कि विज्ञान और तकनीक का उपयोग देश के फायदे के लिए किया जा सकता है।

हमने पंचवर्षीय योजनाओं का खाका रूस से उधार लिया लेकिन उनके अनुभवों से कुछ सीखने की कोशिश की? नहीं। इसीकारण हमारे वैज्ञानिक भी राजनीतिज्ञों के चक्कर लगाते रहते हैं और विद्यार्थी किसी विदेशी संस्थान का सर्टिफिकेट पाने के लिए भागता फिरता रहता है। देश के होनहार वैज्ञानिक यदि अपने बलबूते पर कुछ करना चाहते हैं तो नौकरशाही को संतुष्ट करने के लिए उचित विधि, रपट योजना और निर्धारित खानापूरी के चक्कर में विज्ञान दम तोड़ने लगता है। हमारे वैज्ञानिक संसाधनों पर तीसरे और चौथे दर्जे के लिए तिकड़मबाज लोगों का कब्जा है। जिनका विज्ञान और तकनीक से कोई वास्ता नहीं है इसलिए भारतीय विज्ञान संस्थानों की इमारतों, यंत्रों के रख–रखाव और बड़े–बड़े मठाधीशों के दौरे पर जितना धन खर्च होता है वह व्यर्थ जाता है। कोई यह देखने वाला नहीं है कि कहां क्या हो रहा है। दुनिया में हम दीन–हीन नहीं है। हमारे पास प्राकृतिक संसाधनों, खनिजों का विशाल भण्डार है। दुनिया की सबसे अधिक उपजाऊ कृषि भूमि हमारे पास है। पोखरण परमाणु विस्फोट, अंतरिक्ष उपग्रहों और मिसाइलों के निर्माण में हमारे वैज्ञानिकों की क्षमता जग जाहिर हो चुकी है। जिस किसी भी क्षेत्र में लक्ष्य निर्धारित किये गये और हमारे वैज्ञानिकों को चुनौती मिली है तो उन्होंने काम किया है। जरूरत इस बात की है कि सबसे पहले हमें अपने देश की प्राथमिकताएं तय करें और उसके अनुसार अपनी नीतियां बनायें फिर पूरे संकल्प के साथ उसके अमल में जुट जायें। यदि हमारे देश के राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों की इस देश की जरा भी चिंता है तो यह कार्य उन्हें तुरंत शुरू कर देना चाहिए। कोई भी देश अंततोगत्वा अपनी आंतरिक शक्ति और वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमता से ही आत्मनिर्भर होता है। ❑

-:: स्वदेशी महिला मोर्चा ::-

पिछले अंक में श्रीमती प्रतिभा मेहता, नरसिंगपुर, मध्य प्रदेश द्वारा लिखित विवेचन प्रस्तुत किया गया था। स्वदेशी महिला मोर्चा के विषय पर आपके विचार आमंत्रित हैं।

श्री सरोज कुमार मित्र, अखिल भारतीय सह–संयोजक (स्वदेशी जागरण मंच)

मंच के केन्द्रीय कार्यालय धर्मक्षेत्र, शिवशक्ति मंदिर, सेक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–22, को भेज सकते हैं।

यह आर्थिक विकास दुख क्यों पैदा कर रहा है

मनुष्य के आंतरिक सुख की अवहेलना करके हम घाटे का सौदा हाथ में ले रहे हैं। बिजली बनाकर फ्रिज चलाने से सुख में जो वृद्धि होती है उससे ज्यादा ह्रास नदियों के नाले में परिवर्तित होने, उसमें पल रहे जीवों के खत्म होने तथा सौन्दर्य समाप्त होने से हो रहा है। अतः भारत सरकार को अर्थशास्त्रियों की ऐसी सलाह को सजग होकर क्रियान्वित करना चाहिये।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

हमने अज्ञानी वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियों को नई तकनीकों के ड्राइवर सीट पर बैठा दिया है। अर्थशास्त्रियों ने ऑटोमेटिक मशीनों से उत्पादन को बढ़ावा दिया है। सोच है कि मशीनों से उत्पादन करने में लागत कम आयेगी, बाजार में माल का दाम कम होगा और जनहित हासिल होगा। परन्तु आदरणीय विद्वान यह भूल जाते हैं कि मशीनों से उत्पादन करने में रोजगार न्यून संख्या में उत्पन्न होते हैं, बेरोजगारी बढ़ती है और जनहित के स्थान पर जनअहित होता है।

आज मनुष्य नई तकनीक के मद में अंधा हो गया है। बच्चे को कार की ड्राइवर सीट पर बैठा दिया जाये तो दुर्घटना हो ही जाती है। दरअसल हमने अज्ञानी वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियों को नई तकनीकों के ड्राइवर सीट पर बैठा दिया है। अर्थशास्त्रियों ने ऑटोमेटिक मशीनों से उत्पादन को बढ़ावा दिया है। सोच है कि मशीनों से उत्पादन करने में लागत कम आयेगी, बाजार में माल का दाम कम होगा और जनहित हासिल होगा। परन्तु आदरणीय विद्वान यह भूल जाते हैं कि मशीनों से उत्पादन करने में रोजगार न्यून संख्या में उत्पन्न होते हैं, बेरोजगारी बढ़ती है और जनहित के स्थान पर जनअहित होता है। वर्तमान में पश्चिमी देशों में व्याप्त आर्थिक संकट की तह में भी नई तकनीकों की ही भूमिका है। यातायात का खर्च कम होने एवं इंटरनेट से सूचना का आदान प्रदान होने से पश्चिमी कंपनियां अधिकाधिक माल को विकासशील देशों से आयात कर रही हैं। विकसित देशों के श्रमिक बेरोजगार हो रहे हैं। प्रापर्टी खरीदने के लिये लिये गये ऋण की आदायगी वे नहीं कर पा रहे हैं। इससे सम्पूर्ण विश्व के बैंको पर संकट के बादल छाये हुये हैं। परमाणु तकनीकों का दुरूपयोग आतंकवादियों द्वारा किये जाने की संभावना बन रही है।

तकनीकों के इस दुरुपयोग के पीछे अर्थशास्त्रियों द्वारा बनाई गयी सुख की परिभाषा है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार खपत से सुख मिलता है। इतना सही है कि मनचाही वस्तु मिल जाये तो व्यक्ति सुख का अनुभव करता है जैसे लम्बी यात्रा से लौटे यात्री को शीतल पेय की खपत सुख पहुंचाती है। परन्तु कड़कड़ाते जाड़े में वही शीतल पेय की खपत दुखदाई हो जाती है। अतः व्यक्ति की इच्छाओं के अनुसार ही खपत में वृद्धि करनी होगी।

मनोवैज्ञानिकों ने इच्छाओं के स्रोत पर बहुत शोध किया है। सिगमन्ड फ्रायड ने बताया था कि गहरी इच्छायें व्यक्ति के अचेतन में स्थित रहती हैं। सामान्य मनुष्यों

को इनका ज्ञान नहीं होता है जैसे पूर्वजों द्वारा खेत में गाड़े गये धन का ज्ञान किसान को नहीं होता है। देखा जाता है कि कोई व्यक्ति पढ़ना लिखना पसन्द करता है, दूसरा तेज मोटर साइकिल चलाना पसन्द करता है और तीसरे को धन कमाने की लगन रहती है। अचेतन में पड़ी ये इच्छायें अनजाने ही व्यक्ति को विशेष दिशा में ढकेलती रहती हैं जैसे मैगनेट द्वारा लोहे के टुकड़े अनजाने ही विशेष दिशा में खींच लिये जाते हैं। अतः सच्चे सुख को हासिल करने के लिये सुनिश्चित करना होगा कि व्यक्ति अपनी गहरी अचेतन इच्छाओं को सही मायने में व्यक्त कर रहा है अथवा नहीं। जिस व्यक्ति की इच्छा धन कमाने की हो उसे लाइब्रेरी में बैठा दिया जाये तो पुस्तकों की खपत उसे दुख ही पहुंचायेगी।

अचेतन में पड़ी इच्छाओं को आधुनिक अर्थशास्त्र मान्यता नहीं देता है। बल्कि अर्थशास्त्रियों का प्रयास रहता है कि इन गहरी इच्छाओं को दबा दो और व्यक्ति की बुद्धि को विशेष माल की खपत की ओर घुमा दो। किसी सिनेमाघर के मालिक ने सिनेमा के बीच–दो एक क्षण के लिये पापकार्न के विज्ञापन डाल दिये। ये विज्ञापन इतने कम समय के लिये दिखाये जाते थे कि बुद्धि द्वारा इनके चित्र को समझना कठिन होता था। परन्तु अचेतन द्वारा इन्हें देख लिया जाता था। पाया गया कि इन सिनेमाघरों में पापकार्न की बिक्री बढ़ गयी। अनजाने ही लोगों में पापकार्न खाने की इच्छा उत्पन्न होने लगी। इसी प्रकार विज्ञापनों के माध्यम से कम्पनियां उपभोक्ताओं के मन में खपत की इच्छा पैदा कर रही हैं। मान लीजिये बच्चे के अचेतन में लड्डू पूड़ी खाने की इच्छा बैठी हुयी है। परन्तु विज्ञापनों के प्रभाव से वह नूडल खाने लगता है। ऐसी खपत कम्पनी के लिये लाभप्रद होती है परन्तु खपतकर्ता

के लिये नहीं। उसके अन्तर्मन में बैठी इच्छायें विद्रोह करती हैं और नूडल खाने के बाद भी बच्चा अतृप्त रहता है। अचेतन इच्छाओं का दमन अनेक रोगों को पैदा करता है जैसे पूजाघर में सड़ रहा फल अगरबत्ती की सुखद सुगंध को दूषित कर देता है। दरअसल दबी हुयी इच्छायें व्यक्ति को शान्ति से बैठने नहीं देती हैं। यही अस्थमा, ब्लडप्रेशर, मोटापा एवं चर्म आदि मनोंरोगों के रूप में मनुष्य के जीवन में अभिव्यक्त होती हैं।

विद्वान अर्थशास्त्री इस बात की अनदेखी करते हैं कि नदियों के अस्तित्व और उनके सौंदर्य दर्शन से भी सुख की प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य पृथ्वी पर पलता है वैसे ही नदियों में मछली, केंचुये, मेंढ़क, कछुये इत्यादि अनेक प्रकार के जीव पलते हैं। इन अनमोल निरीह प्राणियों को फलते फूलते देखकर जनता सुखी होती है।

दुर्भाग्य है कि आधुनिक अर्थशास्त्र को इस बात की कोई परवाह नहीं है कि व्यक्ति चाय पीना चाहता है कि शीतल पेय? अर्थशास्त्र के लिये शीतल पेय की खपत होना विकास का पर्याप्त प्रमाण है। शीतल पेय पीकर व्यक्ति बीमार पड़ जाये तो उपचार में किये गये खर्च से सकल घरेलू उत्पाद में और वृद्धि की गणना की जाती है। पाया जाता है कि जो देश खपत में ऊपर हैं वे अकसर सुख में पीछे हैं। समाजशास्त्रियों द्वारा 'सुख के सूचकांक' की गणना की गयी है। पाया गया कि बंगलादेश एवं नाइजीरिया जैसे गरीब देश सुख के शीर्ष पर थे। इससे सिद्ध होता है कि विकसित देशों की ऊंची आय और ऊंची खपत दुखोन्मुख है। इसके नेपथ्य में अचेतन इच्छाओं का दमन है। खपत में वृद्धि हासिल करने के लिये अचेतन मन की इच्छाओं को मन के तहखाने में बन्द कर दिया जा रहा है जहां वे दुखी रहती हैं और मनुष्य में बेचैनी बनाये रखती हैं।

आज नदियों के बादशाह भारत में सभी नदियों को जल विद्युत उत्पादन के

लिये बांधा जा रहा है। अर्थशास्त्रीय सोच है कि इससे जनता को टेलिविजन और फ्रिज चलाने को बिजली की खपत में वृद्धि होगी और वह सुखी होगी। विचार है कि नदियों के दोनों तटों पर तटबन्ध बना दिये जाने चाहिये। इन तटबन्धों का उपयोग हाइवे के रूप में किया जाना चाहिये। इससे ढुलाई का खर्च कम होगा और माल की खपत बढ़ेगी। नदियों के पानी को पूर्णतया सिंचाई के लिये निकाला जा रहा है। दिल्ली में जमुना गन्दे नाले में तब्दील हो चुकी है चूंकि उसमें पानी नहीं है। सोच है कि सिंचाई में विस्तार से गन्ने और अंगूर जैसी कीमती फसलों का उत्पादन होगा। गन्ने का रस पीकर जनता को सुख मिलेगा। परन्तु विद्वान अर्थशास्त्री इस बात की अनदेखी करते हैं कि नदियों के अस्तित्व और उनके सौंदर्य दर्शन से भी सुख की प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य पृथ्वी पर पलता है वैसे ही नदियों में मछली, केंचुये, मेंढ़क, कछुये इत्यादि अनेक प्रकार के जीव पलते हैं। इन अनमोल निरीह प्राणियों को फलते फूलते देखकर जनता सुखी होती है। देश का दुर्भाग्य है कि अर्थशास्त्रियों द्वारा नदियों द्वारा प्रदान किये जा रहे इस सुख की गणना नहीं की जाती है।

मनुष्य के आन्तरिक सुख की अवहेलना करके हम घाटे का सौदा हाथ में ले रहे हैं। बिजली बनाकर फ्रिज चलाने से सुख में जो वृद्धि होती है उससे ज्यादा ह्रास नदियों के नाले में परिवर्तित होने, उसमें पल रहे जीवों के खत्म होने तथा सौन्दर्य समाप्त होने से हो रहा है। अतः भारत सरकार को अर्थशास्त्रियों की ऐसी सलाह को सजग होकर क्रियान्वित करना चाहिये। देखना चाहिये कि प्रस्तुत खपत का प्रारूप अचेतन मन और सौन्दर्य को सुख देने वाला है अथवा आहत करने वाला। यदि आहत करने वाला है तो उस पर तत्काल विराम लगा देना चाहिये। सरकार को सस्ते कपड़े के उत्पादन के लिये करोड़ों जुलाहों को बेरोजगार नहीं बनाना चाहिये। परमाणु से सस्ती बिजली बनाने में परमाणु अस्त्रों के फैलाव को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। आर्थिक विकास दुखदायी नहीं होना चाहिये। ❑

सदस्यता सम्बन्धी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीध्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/–	1000/–
अंग्रेजी	100/–	1000/–

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

भ्रष्टाचार के घेरे में वैक्सीन

विश्व स्तर की बड़ी कंपनियां मुनाफे के लिए कई जुगाड़ कर रही हैं। जैसे जिस बीमारी का वैक्सीन खोज रही हैं उसके कारण होने वाली मौतों के बारे में भयावह जानकारी देना। भारत में हेपाटाइटिस–बी से होने वाली मौतों के आंकड़े हकीकत से कई गुणा अधिक बताए गए। इसी तरह एड्स/एचआईवी के आंकड़े भी बढ़ा–चढ़ाकर बताए गए।

टीकाकरण पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विशेषज्ञों का जो रणनीतिक समूह बनाया है, उसमें ऐसे विशेषज्ञ बैठे हैं जो अनुसंधान के लिए टीका या वैक्सीन बनाने वाली मुख्य कंपनियों से लाखों डॉलर ले चुके हैं। अंग्रेजी में 'सेज' नाम से जाने जाना वाला यह ग्रुप विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्यक्ष को सलाह देता है और संस्तुति करता है कि विभिन्न सदस्य देश किस वैक्सीन को कितना खरीदें।

■ **भारत डोगरा**

इन दिनों विश्व स्तर पर स्वास्थ्य क्षेत्र में इस मुद्दे पर तीखी आलोचना हो रही है कि दुनियाभर के देशों को टीकाकरण संबंधी जो विशेषज्ञ सलाह दी जाती हैं वह अरबों डॉलर का व्यवसाय करने वाली कंपनियों के मुनाफे के हितों से प्रभावित होती हैं। टीकाकरण पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विशेषज्ञों का जो रणनीतिक समूह बनाया है, उसमें ऐसे विशेषज्ञ बैठे हैं जो अनुसंधान के लिए टीका या वैक्सीन बनाने वाली मुख्य कंपनियों से लाखों डॉलर ले चुके हैं। अंग्रेजी में 'सेज' नाम से जाने जाना वाला यह ग्रुप विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्यक्ष को सलाह देता है और संस्तुति करता है कि विभिन्न सदस्य देश किस वैक्सीन को कितना खरीदें।

बताया जाता है कि प्रो. जुहानी एस्कोला को अपने टीएचएल नाम के अनुसंधान कार्यक्रम के लिए वैक्सीन निर्माता कंपनी जीएसके से 63 लाख यूरो मिले। इस ग्रुप के छह अन्य सदस्यों के दवा व टीका कंपनियों से वित्तीय संबंध थे पर मात्र एक ने ही पारदर्शिता अपनाई थी।

सेज के सदस्यों से वित्तीय संबंध रखने वाली कंपनियां कई वैक्सीन बनाती हैं जिनमें एच1एन1 का वैक्सीन भी है। यूरोप की काउंसिल के स्वास्थ्य प्रमुख वुल्फगेंग वोडार्ग का आरोप है कि दवा कंपनियों के दबाव में स्वाइन फ्लू का खतरा बढ़ा–चढ़ाकर बताया गया। उक्त आरोप भारत के लिए इस कारण और प्रासंगिक है क्योंकि हाल के वर्षों में वैक्सीन व वैक्सीन उत्पादन संबंधी अनेक विवादास्पद निर्णय लिए गए हैं।

भारत में मनुष्यों के टीकों का बाजार लगभग 1000 करोड़ रुपए का है व इसके 25 फीसद बढ़ने की उम्मीद है। इतना बड़ा बाजार बहुत कम देशों में है अतः यहाँ बाहरी कंपनियों को पैर जमाना व महंगे उत्पाद बेचना लाभपूर्ण है। दूसरा पक्ष है भारत सरकार के वैक्सीन अनुसंधान व उत्पादन संस्थानों के कार्यक्षेत्र व क्षमता को कम करने के कुप्रयास करना। इसके अंतर्गत पहले भारत में ओरल पोलियो वैक्सीन उत्पादन के स्थानीय प्रयास बंद करवाए गए, जिसके चलते वह इसके लिए पूरी तरह आयात पर निर्भर हो गया।

जरवरी 2008 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के तीन विख्यात संस्थानों में वैक्सीन उत्पादन के

लाइसेंस रद्द करने से देश में वैक्सीन उत्पादन को बहुत धक्का लगा। यह तीन संस्थान हैं – कसौली स्थित 103 वर्ष से चल रहा सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट, कून्नूर स्थित 100 वर्ष से कार्यरत पास्चयर इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया व 60 वर्ष से कार्यरत चेन्नई स्थित बीसीजी वैक्सीन लैब। लाइसेंस बंद करने का कारण वैक्सीन उत्पादन के लिए नवीनतम तौर–तरीके व उपकरण उपलब्ध नहीं होने बताए गए पर सरकारी रिकार्ड गवाह हैं कि संस्थानों ने स्वास्थ्य मंत्रालय को इस बारे में कई बार अवगत कराया। अंतरराष्ट्रीय परामर्शदाताओं ने चाहे जो कहा हो, पर टीकाकरण कार्यक्रम से इन संस्थानों के उत्पादों के बारे में कोई शिकायत नहीं आई थी। ऐसे भी मामले सामने आए हैं जब सार्वजनिक संस्थानों से निजी कंपनियों को कच्चा माल बहुत सस्ता दिया गया जबकि निजी कंपनियों से कच्चा माल पाने के लिए अधिक कीमत चुकाई गई। सार्वजनिक संस्थानों द्वारा यहां कार्य के लिए प्रशिक्षित वैज्ञानिक अचानक एक निजी कंपनी में चले गए।

विश्व स्तर पर वैक्सीन उद्योग में लगी कंपनियों में महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे हैं। उनका ध्यान मोटे मुनाफे वाले वैक्सीन विकसित करने की ओर है। भारत जैसे विकासशील देशों को बड़ी मात्रा में सस्ते, विश्वसनीय वैक्सीन चाहिए पर विश्व स्तर पर इस उद्योग को नियंत्रित करने वाली कंपनियों की प्राथमिकताएं अलग हैं। कम मार्जिन में काम करने में उनकी रूचि नहीं है। हाँ, यदि नए वैक्सीनों को किसी तरह टीकाकरण कार्यक्रम में प्रवेश मिल जाए व इस तरह के कम्बीनेशन को अधिक महंगा बेच सकें तो वे तैयार हैं। इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च

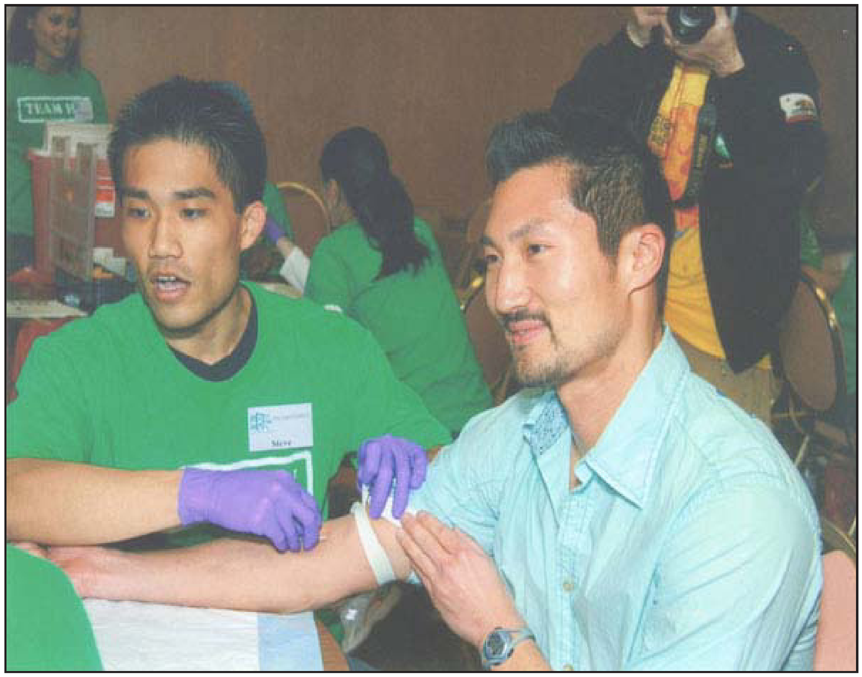

जनवरी 2008 के अनुसार एक अनुमान के अनुसार डीपीटी में हेपाटाइटिस बी वैक्सीनेशन जोड़ने पर डीपीटी इम्यूनाईजेशन का खर्चा 17 गुणा बढ़ जाता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस तरह के कम्बीनेशन बेचने के लिए जोर लगा

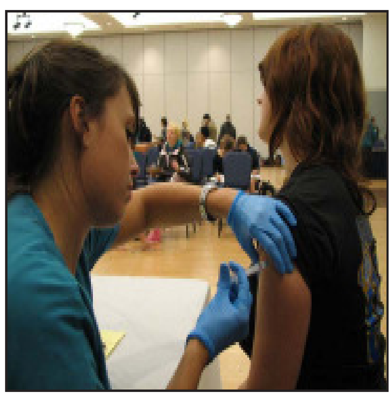

विश्व स्तर पर वैक्सीन उद्योग में लगी कंपनियों में महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे हैं। उनका ध्यान मोटे मुनाफे वाले वैक्सीन विकसित करने की ओर है।

रही हैं। इससे विकासशील व गरीब देशों का खर्च बिना कोई विशेष लाभ प्राप्त किए ही बहुत बढ़ जाएगा। सीमित साधनों की स्थिति में खर्च बढेगा तो कम परिवारों तक टीकाकरण का लाभ पहुंच सकेगा और यही हो भी रहा है।

विश्व स्तर की बड़ी कंपनियां मुनाफे के लिए कई जुगाड़ कर रही हैं। जैसे जिस बीमारी का वैक्सीन खोज रही हैं उसके कारण होने वाली मौतों के बारे में भयावह जानकारी देना। भारत में हेपाटाइटिस–बी से होने वाली मौतों के आंकड़े हकीकत से कई गुणा अधिक बताए गए। इसी तरह एड्स/एचआईवी के आंकड़े भी बढ़ा–चढ़ाकर बताए गए।

दूसरा हथकंडा है महंगे वैक्सीन आरंभ में टीकाकरण में शामिल कर कुछ समय के लिए अंतरराष्ट्रीय सहायता देना। बाद में यह बोझ विकासशील देश को स्वयं उठाना पड़ता है। यदि इस क्षेत्र में इस तरह का भ्रष्टाचार न रोका गया तो देश की अरबों रुपयों की क्षति होगी व करोड़ों लोगों का स्वास्थ्य खतरे में पड़ेगा। ❑

भारत में मानवाधिकार

1975 से 1977 के दौरान आपातकाल के रूप में सामने आया, जिसमें सभी तरह के नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार छीन लिए गए। इस दौरान तमाम राजनेताओं एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया और लोकतांत्रिक अधिकार स्थगित कर दिये गए। सरकार द्वारा दिल्ली में स्लमवासियों की कानूनन बेदखली और जबरन जनसुधारवादी रवैये से लोगों में असुरक्षा एवं भय व्याप्त होने लगा था। आपातकाल के दौरान जब नागरिकों के तमाम अधिकार छिन गए तो मानवाधिकार की लड़ाई को प्रोत्साहित करने की जमीन स्वतः तैयार होने लगी, जिसे विभिन्न राजनीतिक वर्गों का समर्थन प्राप्त था।

■ उमाशंकर मिश्र

भारतीय संविधान की संरचना न्यूनाधिक अंग्रेजी शासन के खिलाफ चलाए गए स्वाधीनता आंदोलन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों के शासनकाल को नागरिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों के हनन का दौर माना जाता है। जिसका प्रभाव स्वतंत्रता आंदोलन पर स्पष्ट नज़र आता है।

भारतीय संविधान विश्व के सर्वाधिक अधिकार प्रदत्त संविधानों में से एक है। हमारे संविधान का निर्माण भी 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के दौरान हुआ। भारत के संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में भी मानवाधिकारों के तत्व समाहित हैं। भारतीय संविधान की संरचना न्यूनाधिक अंग्रेजी शासन के खिलाफ चलाए गए स्वाधीनता आंदोलन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों के शासनकाल को नागरिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों के हनन का दौर माना जाता है। जिसका प्रभाव स्वतंत्रता आंदोलन पर स्पष्ट नज़र आता है। इस संघर्ष के मूल में भारतीय जनमानस के छिने हुए जनाधिकारों को ब्रिटिश हुकूमत के पंजों से आजाद कराने की बात निहित थी। स्वतंत्रता आंदोलन पर कई समाज सुधार आंदोलनों की छाया देखने को मिलती है। इसमें सती प्रथा, बाल विवाह, छूआ–छूत और विधवा पुनर्विवाह को लेकर किए गए प्रयास प्रमुख तौर पर गिनाए जा सकते हैं।

1920 तक नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों को भी कांग्रेस ने अपने राष्ट्रीय एजेंडा में शामिल कर लिया था। डॉ. बी. आर. अंबेडकर द्वारा दलितों के साथ किए जाने वाले भेदभाव के खिलाफ चलाए गए आंदोलन की छाप भी संविधान में झलकती है और दलितों को मुख्यधारा में जोड़ने के तमाम उपाय संविधान में किए गए हैं। हालांकि आजादी के बाद कल्याणकारी राज्य की संकल्पना अस्तित्व में आई, इसके बावजूद भारत के प्रशासनिक ढांचे पर उपनिवेशी शासन की छाप देखने को मिलती है। इस तरह से जातीय, सामंती और सांप्रदायिक प्रवृत्तियों एवं उपनिवेशी नौकरशाही का प्रभाव बना रहा और इसके चलते स्वतंत्रता का उत्साह एक तरह से

क्षीण होने लगा। 'भारत के गणतंत्र बनने के बाद भी काफी समय तक देश को इस तरह की परंपरागत प्रतिकूलताओं से जूझना पड़ रहा था। 60 के दशक के अंतिम वर्षों में जब तक भारतीय राजव्यवस्था को इस बात का आभास हो पाता तब तक देर हो चुकी थी और सरकार की उपचारात्मक नीति के समक्ष छात्र आंदोलनों के अलावा नक्सलवाद जैसी चुनौतियां खड़ी होने लगी। इन राजनीतिक मतभेदों एवं विरोधियों के स्वर को दबाने के प्रयास शुरु हो गए और तत्कालीन सरकार ने इस तरह के विरोध के स्वरों को शांत करने के लिए मानवाधिकारों पर लगाम कसनी शुरु कर दी।'

यही कारण है कि नागरिक अधिकारों की वकालत करने वाले संगठनों एवं राज्य के बीच पारस्परिक सहमति शायद ही कभी देखने को मिलती हो। उल्लेखनीय है कि सामाजिक असामनता को दूर करने हेतु मानवाधिकारों की संकल्पना पाश्चात्य देशों की देन बताई जाती है, जिसे भारत जैसे विकासशील देशों में अमेरिकी साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी ताकत को मजबूत करने का प्रभावशाली अस्त्र माना जाता है। इस तरह मानवाधिकारों की वकालत करने वाले वामपंथी संगठनों पर इस अस्त्र के दुरूपयोग से अमेरिका जैसे पश्चिमी देशों की हितपूर्ति का आरोप लगाया जाता है और इस तरह उनकी भूमिका को संदेहास्पद माना जाता है। हालांकि संदेह के इन बादलों के बावजूद मानवाधिकारों के प्रोत्साहन एवं सरंक्षण की बात को नकारा नहीं जा सकता। 60 के दशक के अंतिम वर्षों में भारतीय राजव्यवस्था भी मानवाधिकारों के दुरुपयोग के प्रभाव से बच नहीं पाई और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के लिए देश में बन रहे इस तरह के प्रतिकूल माहौल को बर्दाश्त करना कठिन हो गया। ऐसे में उदारवादी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों एवं कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित नागरिक अधिकार आंदोलनों की प्रासंगिकता बढ़ने लगी। पीयूसीएल जैसे संगठनों ने नागरिक अधिकारों के प्रोत्साहन एवं मत प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इंदिरा गांधी शासन के धूर्त समाजवादियों एवं वामपंथी दलों के नागरिक अधिकार (Civil Liberties) एजेंडा से सम्बद्ध मानवाधिकार संगठनों की उदारवादी आवाज को अमेरिकी एजेंडा के अंग के तौर पर संदेहास्पद दृष्टि से देखा जाने लगा। बहरहाल नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की मांग को बुलंद करने वाले इस तरह के उदारवादी संगठनों को विदेशी हितों की पूर्ति की एवज में पाश्चात्य एजेंसियों से फंडिग मिलनी शुरु हो गई और विदेशी फंड लेने वाले संगठनों को तभी से संदेहास्पद नज़रिये से देखा जाने लगा। इंदिरा गांधी के शासनकाल में असुरक्षा भाव गहराने लगा तो इसका परिणाम 1975 से 1977 के दौरान आपातकाल के रूप में सामने आया, जिसमें सभी तरह के नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार छीन लिए गए। इस दौरान तमाम राजनेताओं एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया और लोकतांत्रिक अधिकार स्थगित कर दिये गए। सरकार द्वारा दिल्ली में स्लमवासियों की कानूनन बेदखली और जबरन जनसुधारवादी रवैये से लोगों में असुरक्षा एवं भय व्याप्त होने लगा था। आपातकाल के दौरान जब नागरिकों के तमाम अधिकार छिन गए तो मानवाधिकार की लड़ाई को प्रोत्साहित करने की जमीन स्वतः तैयार होने लगी, जिसे विभिन्न राजनीतिक वर्गों का समर्थन प्राप्त था।

1980 में सिखों का जनसंहार और इंदिरा गांधी की हत्या से नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा में राज्य की भूमिका को लेकर गंभीर सवाल खड़े होने लगे थे। हिन्दू राष्ट्रवादी दलों का उदय, राज्य मशीनरी का पक्षपाती रवैया और देश भर में सांप्रदायिक उन्माद ने गत वर्षों में मानवाधिकार के झंडाबरदारों के काम को

जमीन मुहैया कराई है। जनहित से जुड़े मुकद्दमों और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों वी.आर. कृष्ण अय्यर एवं वी.एन. भगवती के निर्णयों से मानवाधिकारों का दायरा कुछ विस्तृत हुआ है। इसमें कैदियों के अधिकार, भूमिहीनों के अधिकार और बंधुआ मजदूरों की मुक्ति से जुड़े निर्णय प्रमुखता से गिनाए जा सकते हैं। 1993 में मानवाधिकार आयोग के गठन के और मानवाधिकार अधिनियम 1993 के अस्तित्व में आने के बाद भारत में राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों को बल मिला है।

70 के दशक में महिला आंदोलनों से अधिकारों की एक नई धारा का उदय होने लगा था। भारत में महिलाओं की स्थिति का आकलन करने के लिए गठित कमेटी ने 1974 में अपनी रिपोर्ट में जीवन के हरेक क्षेत्र में महिलाओं के पिछड़ेपन की बात सामने रखी। ऐसे में महिला संगठनों जैसे– सेवा (SEWA), मानुषी, ज्वाइंट वुमेन्स फोरम जैसे संगठनों ने महिलाओं की स्थिति, घरेलू हिंसा, दहेज बलात्कार, हिरासत में की गई हिंसा, तस्करी आदि को लेकर एक नई बहस छेड़ दी। इन महिला संगठनों ने भारतीय पितृसत्तात्मक समाज की न केवल आलोचना की, बल्कि महिला अधिकारों को लेकर जागरूकता के प्रचार–प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि आरंभ में यह आंदोलन शहरों तक सीमित रहा, लेकिन आज करीब 30 सालों के बाद महिलाओं की राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की बात चल रही है और महिला अधिकारों का दायरा देश भर में विस्तृत हुआ है। चुनाव प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका सुनिश्चित करने में महिला आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। शायद यही कारण था कि संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के तहत स्थानीय स्वशासी निकायों में महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण दिया गया।

आपातकाल के बाद तो सीमांत समुदायों के बीच उत्प्रेरक की भूमिका अदा करने वाले लोगों की संख्या बढ़ने लगी। निचले स्तर पर काम करते हुए इस तरह के जनसंगठनों ने दलितों, आदिवासियों एवं भूमिहीन मजदूरों के अधिकारों को लेकर आवाज उठानी शुरू कर दी। 80 के दशक के मध्य में दलित अधिकार, आदिवासी अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों पर समुदाय के अधिकार की व्याख्या एवं इन्हें पुनर्परिभाषित करने के प्रयास लगातार किए जाने लगे। बांध परियोजनाओं, खनन, विकास परियोजनाओं और वनरोपण के कारण बड़े पैमाने पर होने वाले विस्थापन के विरोध में दलित, आदिवासी एवं सीमांत समुदायों के हित से जुड़ी आवाजें और तीव्र होने लगी। नर्मदा बचाओ आंदोलन, फिशरमैन वर्क्स संघर्ष और दलित अधिकार अभियानों ने सीमांत समुदायों के हक की लड़ाई को मुख्यधारा की राजनीति से जोड़ दिया, जिसके कारण ये विषय भी चर्चा में आ गए।

आज करीब 30 सालों के बाद महिलाओं की राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की बात चल रही है और महिला अधिकारों का दायरा देश भर में विस्तृत हुआ है। चुनाव प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका सुनिश्चित करने में महिला आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

गरीबी उन्मूलन एवं सामाजिक विकास कार्यक्रम को वित्तीय फंडिंग से मिले संबल के चलते आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को विकासात्मक एजेंडा में शामिल कराने के जनसंगठनों के प्रयासों को कामयाबी हासिल होने लगी थी। इस तरह गैर सरकारी संगठनों का दायरा बढ़ने लगा। लेकिन विकास संबंधी खामियों को दूर करने की दिशा में इन

संगठनों का आरंभिक प्रयास वैकल्पिक एवं पूरक बना रहा, जिसके कारण निचले स्तर पर किए गए इन प्रयासों का व्यापक नीतिगत ढांचे से समन्वय स्थापित नहीं हो पा रहा था। ऐसे में निचले स्तर पर किए जाने वाले सामाजिक विकास के गैर सरकारी कार्यों को राजनैतिक एवं नीतिगत फैसलों से जोड़े जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। परिणामतः अनेक जमीनी संगठनों, जनांदोलनों, दलितों, आदिवासियों और भूमिहीन हित समूहों ने संविधान में वर्णित मूल अधिकारों एवं नीति निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त करने हेतु दबाव बनाना शुरु कर दिया।

अपने निर्णयों में जस्टिस कृष्णा अय्यर एवं अन्य न्यायाधीशों ने संविधान के अनुच्छेद–21 में वर्णित जीवन के अधिकार का विस्तार कर इसकी व्याख्या को व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। इसमें जीवन के अधिकार को – गरिमामय जीवन जीने, गरिमामय जीवन को – जीवन यापन के अधिकार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के अधिकार से जोड़ दिया है। इस तरह के न्यायायिक फैसलों से सीमांत समुदायों के हितों की वकालत करने वाले जनसंगठनों को सरकार पर दबाव बनाने का अस्त्र मिल गया। इस तरह से भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को जमीनी जनसंगठनों के प्रयासों की देन माना जा सकता है।

80 के दशक में पर्यावरणीय एवं उपभोक्ता आंदोलनों से उपभोक्ता अधिकार एवं जनाधिकारों को कानूनी एवं नीतिगत उपायों से संरक्षित करने का मार्ग प्रशस्त होने लगा। वहीं आदिवासी आंदोलनों के उदय एवं अल्पसंख्यक समुदायों के हाशिये पर धकेले जाने से सांस्कृतिक अधिकार सार्वजनिक बहस का मुद्दा बनने लगे। 70 का दशक जहां नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की लड़ाई को समर्पित रहा, वहीं 80 का दशक संयुक्त अधिकार और संसाधनों पर समुदाय के अधिकार एवं जीवन यापन के संघर्ष का गवाह बना। जबकि 90 के दशक में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों हेतु जनसंघर्ष केन्द्रीय पटल पर दृष्टिगोचर होता है।

21वीं सदी के अब तक हम नौ बसंत देख चुके हैं। हालांकि मानवाधिकारों की सैद्धांतिक व्याख्या और उनका अस्तित्व तो पिछली शताब्दी में ही सामने आ चुका है और इसके सही एवं गलत दोनों तरह के उपयोग और परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए हैं। उपरोक्त उदाहरणों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि साम्राज्यवादी ताकतें किस तरह चालाकी से मानवाधिकारों का हवाला देते हुए विभिन्न राष्ट्रों में अपनी घुसपैठ जमाने के लिए मार्ग तैयार कर लेती हैं और स्थानीय व्यवस्था को संक्रमित करने में जुट जाती हैं। कई बार तो लोगों को इस हद तक उद्वेलित कर दिया जाता है कि वे मरने–मारने पर उतारू हो जाते हैं। ध्यान देना होगा कि यह उद्वेलन भी मीडिया द्वारा ही प्रचारित एवं प्रसारित होता है, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गाहे–बगाहे उन्माद की स्थिति पैदा हो जाती है। मीडिया को इस तरह के प्रोपेगेण्डा को समझकर इससे सावधानी से निपटने की आवश्यकता होती है, ताकि समाज को इसके ज़हरीले दंश से बचाया जा सके। ❑

साम्राज्यवादी ताकतें किस तरह चालाकी से मानवाधिकारों का हवाला देते हुए विभिन्न राष्ट्रों में अपनी घुसपैठ जमाने के लिए मार्ग तैयार कर लेती हैं और स्थानीय व्यवस्था को संक्रमित करने में जुट जाती हैं। कई बार तो लोगों को इस हद तक उद्वेलित कर दिया जाता है कि वे मरने–मारने पर उतारू हो जाते हैं।

(लेखक 'इंडिया फाउंडेशन फॉर रूरल डेवलपमेंट स्टडीज' से संबंधित है।)

उम्मीद के सहारे अर्थव्यवस्था

भारत विरोधाभासों का देश है, यह बात आर्थिक सर्वेक्षण से फिर साफ होती है। ग्लोबलाइज्ड अर्थव्यवस्था की समस्याओं को चिह्नित करते हुए आर्थिक सर्वेक्षण बताता है कि अप्रैल–दिसंबर 2009 में निर्यात में करीब बीस प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। ग्लोबलाइजेशन सिर्फ विदेशी निवेश ही नहीं लाता, अमेरिकन अर्थव्यवस्था की समस्याएं भी लाता है, जो तमाम उघोगों में मंदी की शक्ल में सामने आता है।

■ **आलोक पुराणिक**

अगर अनुमानों के आधार पर विश्लेषण होना हो, तो फिर भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी की राह पर है। हाल में पेश आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक 2010–11 में नौ प्रतिशत करीब की बढ़ोतरी होगी। मंदी से उबरने में लगी अर्थव्यवस्था की स्थिति पर उत्साहित आर्थिक सर्वेक्षण हालांकि यह चिंता व्यक्त करता है कि खाने–पीने की चीजों की महंगाई दूसरे आइटमों तक भी जा सकती है।

आर्थिक सर्वेक्षण में एक बात खुले तौर पर स्वीकार की गयी है, जिसके बारे में देश का आम उपभोक्ता बहुत दिनों से जानता है। वह यह बात है कि बजट में साफ तौर पर कहा गया है कि थोक मूल्यों के मुकाबले रिटेल मूल्य दस गुना ज्यादा तेजी से बढ़ते हैं। खाने–पीने की चीजों में थोक मूल्य बढ़ोतरी करीब बीस प्रतिशत है। इसका दस गुना किया जाए, तो साफ होता है कि करीब दो सौ प्रतिशत का इजाफा एक साल के अंदर खाने–पीने की चीजों में हो गया है। यानी सौ का माल तीन सौ का बिक रहा है।

सर्वेक्षण में भारत सरकार की आलोचना करते हुए कहा गया है कि दिसम्बर 2009 से खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि के संकेत दिख रहे हैं। इसी के साथ ईंधन की कीमत में वृद्धि और अन्य वस्तुओं के दाम पर असर से अगले कुछ महीनों में महंगाई बढ़ने के बारे में चिंता पैदा हो गई है। आर्थिक सर्वेक्षण देखकर साफ होता है कि सरकार गठबंधन की चल रही है। अपनी ही सरकार की आलोचना से साफ होता है कि कहीं न कहीं शरद पवार पर निशाना साधा गया है। यह भाव कम कैसे होंगे, गरीबों को इस संबंध में राहत कैसे दी जाएगी, इस बारे में आर्थिक सर्वेक्षण मौन है। पर महंगाई के भविष्य को लेकर वह मौन नहीं है। इसमें चेतावनी दी गई है पहले से बढ़ रही महंगाई अगले कुछ महीनों में और बढ़ सकती है। इस सर्वेक्षण में खाघ पदार्थों की प्रबंधन नीतियों, विशेष तौर पर चीनी जैसी खाद्य सामग्री के बढ़ते दामों की आलोचना की गयी है।

आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, 'भारत के लिए यह पूरी तरह से संभव है कि उसकी विकास दर दस या उससे अधिक हो जाए और वह अगले चार साल में दुनिया की सबसे तेज गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बन सकती है।' और यह सब तेजी इसके बावजूद कि आर्थिक सर्वेक्षण कहता है कि 2009–10 में खेती और उससे जुड़ी गतिविधियों में दशमलव दो प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी है। अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र की दुर्गति के बावजूद भविष्य की तेजी के अनुमान आर्थिक सर्वेक्षण में बदस्तूर हैं।

आर्थिक सर्वेक्षण में एक बात साफ तौर पर उभरती है कि सरकार खाने–पीने की चीजों की महंगाई को चिंताजनक जरूर मानती है। आर्थिक सर्वेक्षण फूड कूपनों के जरिये गरीब परिवारों को सीधे तौर पर खाद्य अनुदान देने का प्रस्ताव करता है, पर यह प्रस्ताव अमली जामा कैसे पहनेगा, यह सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण है। राशन की दुकानों की तरह यह व्यवस्था भी भ्रष्ट तत्वों द्वारा बरबाद न हो, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए पर इस संबंध में आर्थिक सर्वेक्षण कोई आश्वासन नहीं दे सकता। हां, आर्थिक सर्वेक्षण से यह बात जरूर साफ होती है कि तमाम उद्योगों को मंदी से उबरने के लिए जो राहत पैकेज दिये गये थे, उनके वापस लिए जाने का संकेत सर्वेक्षण करता है। गौरतलब है कि अगर राहत पैकेज वापस लिये गये, तो आटोमोबाइल उद्योग के विकास की रफ्तार चौथे गीयर से गिरकर पहले गीयर में आ सकती है। सर्वेक्षण साफ करता है कि भारत के पास करीब 557 टन सोना है। सोने के मामले में यह विश्व का दसवां सबसे अमीर देश है। पर इस तथ्य के सामने यह तथ्य भी अपनी जगह खड़ा है कि भारत में अस्सी प्रतिशत आबादी रोज सिर्फ बीस रूपये या इससे भी कम पर अपना जीवन बसर करती है।

भारत विरोधाभासों का देश है, यह बात आर्थिक सर्वेक्षण से फिर साफ होती है। ग्लोबलाइज्ड अर्थव्यवस्था की समस्याओं को चिह्नित करते हुए आर्थिक सर्वेक्षण बताता है कि अप्रैल–दिसंबर 2009 में निर्यात में करीब बीस प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। ग्लोबलाइजेशन सिर्फ विदेशी निवेश ही नहीं लाता, अमेरिकन

(शेष पृष्ठ 32 पर)

सर्वेक्षण में भारत सरकार की आलोचना करते हुए कहा गया है कि दिसम्बर 2009 से खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि के संकेत दिख रहे हैं। इसी के साथ ईंधन की कीमत में वृद्धि और अन्य वस्तुओं के दाम पर असर से अगले कुछ महीनों में महंगाई बढ़ने के बारे में चिंता पैदा हो गई है।

राजनीति से दूर मत भागिये

'राजनीति' के प्रभाव बिना कौन सा कार्य हो रहा है? जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु तक राजनीतिक प्रभाव को समाज–यात्रा में सहज देखा जा सकता है। अतः जब कोई यह कहता है कि राजनीति से देश सुधर नहीं सकता तो हम उससे सहमत नहीं होते। हां! यह सत्य है कि सब कुछ राजनीति से नहीं हो सकता पर यह तो पूर्ण सत्य है कि बहुत कुछ राजनीति से हुआ है, हो रहा है और आगे भी होगा।

■ प्रभात झा

'राजनीति' को कभी किसी ने उत्कृष्ट स्थान नहीं माना। पर जितने प्रखर राष्ट्रवादी हुए उनका नाम राजनीतिक क्षेत्र से ही हुआ। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं कि राजनीति का निकृष्ट स्थान, उत्कृष्ट कार्य करने का एक सहज स्थान है। बस! आपको तय करना है कि आप काम कैसा करना चाहते हैं?

'राजनीति' के प्रभाव बिना कौन सा कार्य हो रहा है? जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु तक राजनीतिक प्रभाव को समाज–यात्रा में सहज देखा जा सकता है। अतः जब कोई यह कहता है कि राजनीति से देश सुधर नहीं सकता तो हम उससे सहमत नहीं होते। हां! यह सत्य है कि सब कुछ राजनीति से नहीं हो सकता पर यह तो पूर्ण सत्य है कि बहुत कुछ राजनीति से हुआ है, हो रहा है और आगे भी होगा।

यह तो समाज को तय करना होता है कि वह कैसी राजनीति चाहती है। 'राजनीति' से आप दूर रहकर राजनीति नहीं कर सकते। राजनीति में डूबकर भी आप राजनीति नहीं कर सकते। फिर क्या और कैसे? तो आपको पहले यह समझना होगा कि आप राजनीति क्यों कर रहे हैं? यह सवाल सौ टके का है। देश में अधिकांश लोग जो राजनीति में हैं, वे राजनीति क्यों कर रहे हैं, वे इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ रहते हैं। आप राजनीति क्यों कर रहे हैं, इसकी स्पष्टता नहीं रखेंगे तो राजनीति सदैव आपको भटकायेगी। राजनीति रूतबा गालिब करने का स्थान नहीं है। न ही 'राजनीति' ग्लैमर की चीज है। 'राजनीति' न केवल पद है और न केवल प्रतिष्ठा। 'राजनीति' केवल तिकड़म भी नहीं है। लोग इसे धूर्तता और चार्तुयता का स्थान भी कहते हैं। 'राजनीति' न शौक है और न शगल। 'राजनीति' न स्वयं की गरीबी दूर करने का जरिया है और न ही जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाषावाद को पनपाने और राष्ट्रीयता को डुबोने का

'राजनीति' को कभी किसी ने उत्कृष्ट स्थान नहीं माना। पर जितने प्रखर राष्ट्रवादी हुए उनका नाम राजनीतिक क्षेत्र से ही हुआ। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं कि राजनीति का निकृष्ट स्थान, उत्कृष्ट कार्य करने का एक सहज स्थान है। बस! आपको तय करना है कि आप काम कैसा करना चाहते हैं?

स्थान है। राजनीति न डराने का, न हंसाने का और न ही रूलाने का नाम है। राजनीति न केवल चुनाव है और न केवल विधायक, सांसद बनने का जरिया है। राजनीति न वंशवाद की विषबेल लगाने का केन्द्र है और न धंधा करने की मंडी। यहां न बोली लगनी चाहिए और न आचरण भ्रष्ट होना चाहिए। राजनीति न तो किसी को उजाड़ने का जरिया है और न स्वयं को सजाने और संवारने का। राजनीति न केवल अखबार की बयानबाजी है और न केवल चैनलों पर देने वाली बाइट है। राजनीति न परिक्रमा है और न मुंगेरीलाल के सपने। राजनीति न केवल बहस है और न केवल सेमिनार। राजनीति न केवल स्वयं का भविष्य है और न अपराध पनपाने का केन्द्र। साथ ही न अपराधियों को संरक्षण देने का अड्डा है और न पुलिस और अदालतों को प्रभावित करने की एजेंसी। राजनीति न तो टेंडर भरने का जरिया है न निवेश करने का बाजार। राजनीति न सुरा–सुन्दरी में डूबे रहने का स्थान है और न अय्यासी का अखाड़ा है। राजनीति व्यापार, बाजार और व्यभिचार का नाम नहीं है। राजनीति न चक्का जाम और प्रदर्शन का नाम है और न ही राष्ट्रीय संपत्ति को तोड़ने का नाम है।

आखिर 'राजनीति' फिर है क्या? मुश्किल यही है कि जो राजनीति की समझ रखते हैं, वे राजनीति में प्रभावी नहीं हैं और जो राजनीति की समझ नहीं रखते हैं वे पूरी तरह हावी होने की कोशिश करते हैं। अच्छा यही होता कि जब कोई राजनीति में आए तो जनता के सामने अपनी बात साफ–साफ रख दे कि वह राजनीति में क्यों आया है? उसे अपने प्रति ईमानदार रहना चाहिए। वह जिस कार्य के लिए आया है, यदि वह स्पष्ट बता देता है तो कम से कम जनता यह तो कहेगी, चलो बेचारे ने साफ–साफ बोल तो दिया। पर ऐसा नहीं होता। आते सभी है राष्ट्र सेवा के लिए। गरीबों के आंसू पोंछने के लिए। दूसरों की चिंता करने के लिए। पर क्या ऐसा वाकई होता है?

मुझे लगता है कि जो राजनीति में आता है, उसके सामने नेतृत्व का जैसा आदर्श होता है वह उसी मार्ग पर चल देता है। अब आप कहेंगे कि राजनीति में मार्ग कौन हो सकता है? दिक्कत यही है लोग मार्ग तय नहीं करते और चलते रहते हैं। होता फिर यह है कि वे चलते–चलते वहां पहुंच जाते हैं, जहां–जहां से उन्हें पथ्य परहेज रखना होता है। वे फिर पहुंचते नहीं हैं, वे गिरने लगते हैं, रिसने लगते हैं। धीरे–धीरे 'वे' राजनीति में क्यों आए, समझ जाते हैं। फिर क्या उसके बाद तो फिर वे राजनीति की इसी विधा को समझने लगते हैं। लग गई लाटरी। सफल हुआ जीवन। अपना ही नहीं सात पुश्तों का। धीरे–धीरे से परम्परागत धनाढ्य की श्रेणी में

आखिर 'राजनीति' फिर है क्या? मुश्किल यही है कि जो राजनीति की समझ रखते हैं, वे राजनीति में प्रभावी नहीं हैं और जो राजनीति की समझ नहीं रखते हैं वे पूरी तरह हावी होने की कोशिश करते हैं। अच्छा यही होता कि जब कोई राजनीति में आए तो जनता के सामने अपनी बात साफ–साफ रख दे कि वह राजनीति में क्यों आया है? उसे अपने प्रति ईमानदार रहना चाहिए। वह जिस कार्य के लिए आया है, यदि वह स्पष्ट बता देता है तो कम से कम जनता यह तो कहेगी, चलो बेचारे ने साफ–साफ बोल तो दिया।

अचानक बने धनाढ्य भी शामिल हो जाते हैं, राजनीति की ओर एक टक निगाहों से सभी देखने लगते है। आओ–आओ सब दुख दूर करेंगे राम। इसके बाद लगती है होड़। लगे भी क्यों नहीं? कल तक जो मारे–मारे मांगते–मांगते फिर रहा था, आज लोग उसके पीछे! चमत्कार कैसे हुआ? लोग देखते हैं और वे भी उसी राजनीतिक दुनिया की तलाश करने लगते हैं, जो उसे रातों–रात पैसे वाला बना दे। राजनीति, गरीबी दूर करते–करते के नारों के साथ ही अमीर बनने का सस्ता जरिया बन गई।

सोचना चाहिए, कि हम देश किसके भरोसे सौंप रहे हैं। ये आधुनिक गांधीजी है। सरकार के धन से अपनी गरीबी दूर करते है और उसके लिए उन्हें एक भ्रष्ट तंत्र भी उपलब्ध रहता है, जो सदैव अनुचित मार्ग के सभी मार्ग बनाए रखता है। धीरे–धीरे राजनीति ऐसे ही लोगों के लिए वरदायिनी हो गई।

आप लाख कोसते रहें, उनका क्या होना है। वे तो फिर जीत जायेंगे, क्योंकि वे जनतंत्र की मंडी में वोटरों के थोक विक्रेताओं पर पैनी निगाह रखते हैं और उन वोट के थोक व्यापारियों की जेब सदैव गरम रहती है। समाज का यह तबका, जहां मिली चाय, वहीं बदली राय, की बढ़ती जनसंख्या से देश त्रस्त होता जा रहा है। 63वां स्वतंत्रता और 61वां गणतंत्र दिवस बीत जाने के बाद भी हम दो बूंद पानी, पेटभर रोटी, सिर छुपाने के लिए घर, तन ढकने के कपड़ों के लिए मोहताज हैं; आखिर यह कैसी राजनीति है?

राजनीति में सिर्फ एक बात रह गई है 'वोट कैसे मिले'। जैसे भी हो, वैसे मिले। एक बार मिल जाए फिर तो उसे जाने नहीं दूंगा।

हमें लगता है कि अब वह दिन नहीं लौटेगा, जब राजनीति समाज के लिए की जाती थी। राजनीति पर–पीड़ा दूर करने का माध्यम था। राजनीति नवनिर्माण के लिए होती थी। नैतिकता और प्रामाणिकता राजनीति की प्राणदायिनी थी। संवेदन–शीलता, राजनीति की मांग की सिंदूर थी। 'नैतिकता' से जुड़ी राजनीति की समाज कद्र करता था। सहजता, सरलता, विनम्रता, राजनीति में मायने नहीं बल्कि मर्यादा बढ़ाती थी। पहले राजनीति में कार्यकर्ता बनाए जाते थे, अब समर्थक बनाए जाते हैं, वह भी दल का नहीं स्वयं का। यही कारण है कि राजनीति दल की नहीं जेब की हो गई। जिसकी जेब जितनी भारी, उसकी ओर जनता सारी। जनता भी क्या करे? उसकी भी आदत अब वैसी नहीं रही, जैसे पहले थी। अब राजनीति में लोग 'तत्काल' की ओर देखते हैं। वह दिन लद गए जब एक महीने पूर्व लोग आरक्षण करवाते थे। 'आरक्षण' कराने के लिए आगामी योजना बनती है। धैर्य लगता है। दूरदृष्टि लगती है। अब कहां? आज तो वही करेंगे जिसका प्रतिसाद कल मिलेगा।

बदलाव की दुखद मोड़ पर जनतंत्र

आप लाख कोसते रहें, उनका क्या होना है। वे तो फिर जीत जायेंगे, क्योंकि वे जनतंत्र की मंडी में वोटरों के थोक विक्रेताओं पर पैनी निगाह रखते हैं और उन वोट के थोक व्यापारियों की जेब सदैव गरम रहती है। समाज का यह तबका, जहां मिली चाय, वहीं बदली राय, की बढ़ती जनसंख्या से देश त्रस्त होता जा रहा है। 63वां स्वतंत्रता और 61वां गणतंत्र दिवस बीत जाने के बाद भी हम दो बूंद पानी, पेटभर रोटी, सिर छुपाने के लिए घर, तन ढंकने के कपड़ों के लिए मोहताज हैं; आखिर यह कैसी राजनीति है?

सिसक–सिसक कर रो रहा है। जो अपवाद है वे भी अफवाह के शिकार हो जाते हैं। अपवाद बचे नहीं, बल्कि पूरी तरह मिट जाए, इसी की ओर लोग लगे रहते हैं। पर क्या इस सच्चाई से इंकार किया जा सकता है कि जीत सत्य की होगी। सत्यमार्ग पर ही चलना होना। हम स्वयं कहते हैं कि अहंकारी रावण का जब अंत हो सकता है तो फिर हम क्या? यह जानते हुए भी हम अहम् से मुक्ति कहां पाते हैं?

आज राजनीति समझने वालों लोगों की आवश्यकता है न कि राजनीति करने वालों की। अधिकता आज उनकी हो गई है जिनकी राजनीतिक समझ नहीं है वे राजनीति करने लगे हैं। फिर जब राजनीति नासमझों के हाथों में चली जाएगी तो फिर

आज राजनीति समझने वालों लोगों की आवश्यकता है न कि राजनीति करने वालों की। अधिकता आज उनकी हो गई है जिनकी राजनीतिक समझ नहीं है वे राजनीति करने लगे हैं। फिर जब राजनीति नासमझों के हाथों में चली जाएगी तो फिर आप उनसे समझदारी की राजनीति की अपेक्षा क्यों करते हैं? जैसा बोया है, वैसा ही काटना पड़ेगा।

आप उनसे समझदारी की राजनीति की अपेक्षा क्यों करते हैं? जैसा बोया है, वैसा ही काटना पड़ेगा। 'स्व–तंत्र' के आगे हमारा गणतंत्र पूरी तरह से घुटने टेक चुका है। स्थिति बदलनी होगी। ऐसे लोगों को तेजी से राजनीति में शामिल होना होगा, जो राजनीति समझते हैं। विचारधारा समझते हैं। समाजधारा समझते हैं। व्यावहारिकता समझते हैं। ऐसे लोगों की प्राण–प्रतिष्ठा सभी को मिलकर करनी होगी तब जाकर राजनीति के मायने बदलेंगे और देश जैसा भारत चाहता है वैसा भारत बनेगा अन्यथा तो फिर 'मनरेगा' की राशि के आगे सरपंच, जनपद और जिला न केवल नतमस्तक होंगे बल्कि पूरी तरह से बोली लगाकर राजनीति की त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव की मंडी में खरीद फरोख्त के जिस तरह शिकार हो रहे हैं, वे फिर 'मनरेगा' के रोग से ग्रसित होकर गणतंत्र की जड़ें खोदेंगे और हम और आप चाहकर भी कुछ नहीं कर पायेंगे। ❑

(लेखक भाजपा के राष्ट्रीय सचिव व सांसद हैं।)

(पृष्ठ 28 का शेष . . . .)

उम्मीद के सहारे अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था की समस्याएं भी लाता है, जो तमाम उघोगों में मंदी की शक्ल में सामने आता है। सर्वेक्षण में बताया गया है कि करीब 52 करोड़ मोबाइल प्रयोक्ताओं के साथ भारत में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा वायरलैस नेटवर्क है। लगभग हर दूसरे भारतीय की पहुंच फोन तक है। सर्वेक्षण में उम्मीद व्यक्त की गयी है कि थ्री जी के आने से बेहतर तकनीक आएगी। पर थ्री जी को लेकर उम्मीदें कब पूरी होंगी, यह कोई नहीं बता सकता, प्रधानमंत्री तक नहीं। दरअसल इस देश में थ्री जी इकोनोमिक्स का नहीं बल्कि पालिटिक्स का विषय है। यह बात समझने के लिए अर्थशास्त्री होना जरूरी नहीं है। कुल मिलाकर देखें, तो साफ होता है कि आर्थिक सर्वेक्षण एक हद तक समस्याओं पर उंगली रखने की कोशिश तो करता है, पर समस्या का समाधान फिलहाल उसके पास नहीं है। यह बात भी साफ होती है। खास तौर पर खाद्य अर्थव्यवस्था के विश्लेषण और खाने–पीने की चीजों की महंगाई की आलोचना से गठबंधन सरकार की राजनीति भी साफ होती है, जिसमें किसी विषय पर कदम उठाना सरकार के हाथ में नहीं होता।

थ्री जी की नीलामी को लेकर उम्मीद जताने वाली सरकार यह बताने की स्थिति में नहीं है कि थ्री जी की नीलामी कब तक हो जाएगी। वजह साफ है कि वित्त मंत्रालय का आर्थिक सर्वेक्षण जैसी उम्मीद जाहिर करेगा, संचार मंत्रालय के लिए जरूरी नहीं है कि उसके अनुरूप आचरण करे। संचार मंत्रालय किसी और पार्टी के एमपी के हाथ में है तो वित्त मंत्रालय किसी और पार्टी के एमपी के हाथ में है।

कृषि मंत्रालय किसी और पार्टी के एमपी के हाथ में है और वित्त मंत्रालय किसी और पार्टी के नेता के हाथ में, यह बात भी आर्थिक सर्वेक्षण से साफ होती है। कुछ दिनों पहले केंद्रीय कृषि मंत्री शरद पवार ने यह समझाने की कोशिश की थी कि महंगाई अकेले उनके मंत्रालय की जिम्मेदारी नहीं है। बल्कि यह सरकार की सामूहिक जिम्मेदारी है। गठबंधन की राजनीति इसी हिसाब से चली तो संभव है कि कुछ समय बाद हर मंत्रालय अपना–अपना अलग आर्थिक सर्वेक्षण निकाले। तब जाकर तस्वीर एकदम साफ हो पाएगी। लोकतंत्र में आर्थिक और राजनीतिक मजबूरियां किस तरह से टकराती हैं, यह बात भी यह आर्थिक सर्वेक्षण देखकर साफ होती है। कुल मिलाकर यह सर्वेक्षण मर्ज को तो विश्लेषित करने की कोशिश करता है पर उसका इलाज शायद इस सरकार के पास नहीं है। हां, बहाने अलग–अलग मंत्रालयों से अलग अलग आएंगे, इतनी आश्वस्ति जरूर इस सर्वेक्षण से होती है। ❑

एजोला लगाओ, गोवंश बचाओ

गायों को एजोला खाने का अभ्यास करवाना होता है। प्रारंभ में एजोला को पारंपरिक पशु आहार के साथ बराबर मात्रा में (1:1) मिलाकर खिलाया जाता है। लगभग 15 दिन बाद गाय एकेला एजोला खाना सीख जाती है।

■ डॉ. रणजीत सिंह

गो–वंश बचाने के लिए, एलोजा एक चमत्कार से कम नही है। नगदी फसलों के बढ़ते चलन, निरंतर कम होते चारा उत्पादन तथा उजड़ते औरण, सिकुड़ते गौचर तथा बाजार में निर्मित पशु आहार की आसमान छूती कीमतों के कारण, गौ पालन अत्यंत कष्ट–साध्य कार्य बन चुका है ऐसे कठिन समय में एजोला जेठ की बारिस जैसा सुखकारक है। एजोला इन सारी समस्याओं का आश्चर्यजनक समाधान है।

क्या है एजोला?

एजोला, मीठे पानी का शैवाल हैं जो कम – गहरे पानी की तैरता रहता है इसकी बढ़वार अत्यंत आश्चर्यजनक है और इसकी पौष्टिकता, उपलब्ध खाद्यान्नों में सर्वश्रेष्ठ है। एजोला पर किए गए वैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि एजोला का पादप अपनी पत्तियों पर ''आनाबीना एजोली'' नामक ब्लू–ग्रीन एल्गी को सह–जीवी के रूप में आश्रय देता है। यह एल्गी वायुमंडल से नाइट्रोजन को संश्लेषित करके, एजोला को प्रोटीन बनाने में सहयोग करता है। इस प्रकार एजोला केवल वायुमण्डल की हवा, सूर्य के प्रकाश और उपलब्ध पानी की सहायता से उत्कृष्ट आहार तैयार करता है।

एजोला में पौष्टिक तत्व

एजोला में भरपूर मात्रा में प्रोटीन, सभी प्रकार के अति आवश्यक अमीनो एसिड, विटामिन 'ए', विटामिन 'बी–12', बीटा – केरोटीन, वृद्धि उत्प्रेरक तत्व तथा खनिज लवण यथा, कैल्शियम फॉसफॉरस, पोटेशियम, आयरन, कॉपर, मेग्नेशियम आदि प्रमुख है। शुष्क भार के आधार पर एजोला में 25 से 35 प्रतिशत प्रोटीन, 10–15 प्रतिशत खनिज लवण, 7 से 10 प्रतिशत अमीनो एसिड, बड़ी मात्रा में जैव सक्रिय पदार्थ तथा जैव पोलीमर्स पाए जाते है। एजोला में कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की मात्रा न्यूनतम होती है। इस प्रकार एजोला में उपलब्ध पोषक तत्वों की प्रचुरता, एजोला को एक आदर्श आहार बनाती है।

अधिकतम मात्रा में प्रोटीन और साथ में न्यूनतम मात्रा में लिग्निन होने के कारण, एजोला प्रत्येक जीव–मात्र के लिए एक सुपाच्य आहार है उस पर आनन्द की बात यह है कि एजोला की पैदावार अत्यंत शीघ्र बढ़ती है और लागत कीमत लगभग नगण्य है। एक प्रकार एजोला गौपालकों के लिए ईश्वरीय उपहार है।

एजोला एक आदर्श पशु आहार

सबसे पहले नारडेप – विवेकानंद केन्द्र कन्याकुमारी ने एजोला को पशु–आहार के रूप में विकसित करने के अनेक प्रयोग किए। इसके पश्चात् दक्षिण भारत के अनेक कृषि विज्ञान केन्द्रों तथा बारामती, बभलेश्वर आदि केन्द्रों पर व्यापाक वैज्ञानिक परीक्षण हुए।

सभी प्रयोगों के परिणाम बताते हैं कि एजोला बाजार द्वारा उपलब्ध महंगे दाले–बाटे (पशु–आहार) का सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। अनेक स्थानों पर हुए प्रयोगों से यह प्रमाणित हुआ है कि प्रतिदिन 1.5 से 2 किलो 'हरा एजोला' खिलाने से दुधारू गायों में 15 से 20 प्रतिशत तक दुग्ध उत्पादन बढ़ा है। साथ ही दूध की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। साथ ही गाय के स्वास्थ्य तथा वजन में बढ़ोतरी पायी गयी है।

एजोला द्वारा दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी के प्रयोगों में एक महत्वपूर्ण विषय ध्यान में आया कि दुग्ध उत्पादन में वृद्धि प्रोटीन भार के आधार पर किए गए आकलनों से अधिक पाई गई। यह ध्यान में आया कि दुग्ध उत्पादन में वृद्धि केवल प्रोटीन की मात्रा के कारण ही नहीं होती अपितु एजोला में उपलब्ध 'कैरोटिनाइडस', बायो पॉलिमर्स तथा प्रो–बायोटिक्स इसके लिए उत्तरदायी है।

गायों को एजोला खाने का अभ्यास करवाना होता है। प्रारंभ में एजोला को पारंपरिक पशु आहार के साथ बराबर मात्रा में (1:1) मिलाकर खिलाया जाता है। लगभग 15 दिन बाद गाय एकेला एजोला खाना सीख जाती है। एजोला 1.5 से 2 किलो प्रतिदिन, प्रति गाय खिलाना पर्याप्त है।

एजोला उत्पादन

नारडेप पिछले 10 वर्षों से एजोला के व्यापक उत्पादन पर अध्ययन कर रहा है। इसी क्रम में उसने एक कम लागत और प्रभावी उत्पादन की विधि विकसित की है दक्षिण भारत के किसानों में यह अत्यंत लोकप्रिय है। स्वदेशी जागरण मंच, राजस्थान ने विख्यात जैविक कृषि विशेषज्ञ डॉ. ए.के. शर्मा के मार्गदर्शन में राजस्थान की परिस्थितियों में नारडेप पद्धति का

अध्ययन किया है।

राजस्थान की दृष्टि से एजोला का उत्पादन किसी छायादार वृक्ष के नीचे अथवा 75 प्रतिशत धूप रोधी 'हरी जाली' की छाया में करना आवश्यक है। एजोला 25 डिग्री सेल्सियस के तापमान को पसंद करता है। एजोला उगाने के लिए भूमि को साफ किया जाता है और खर–पतवार हटा दें। 3 x 2 x 0.2 मीटर लम्बा, चौड़ा और गहरा कृत्रिम 'ताल' बनाने के लिये भूमि पर रेखांकन किया जाता है। चारों तरफ 20–30 से.मी. ऊंची ईंटें जमा कर किनारा बनाया जाता है। अब पानी रखने के लिए इस पर 'सिल्साऊलिन' नामक पोलिथीन बिछाया जाता है। सिल्साऊलिन अत्यंत टिकाऊ पोलीथीन है जो सूर्य से निकलने वाली 'अल्ट्रा वायलेट किरणों' का प्रतिरोधी है।

'ताल' में पानी की गहराई एक समान रखने के लिए इसका मतलब समतल होना आवश्यक है तथा आसपास के पेड़–पौधों की जड़ें, सिल्साऊलिन में छेद नहीं करें, इसके लिए 'ताल' में सिल्साऊलिन बिछाने से पहले नीचे कुछ अनुपयोगी पोलीथीन पशु–आहार के खाली कट्टे, सीमेंट के खाली कट्टे आदि जमा देना चाहिए। अब हमारा आयताकार कृत्रिम 'ताल' तैयार है सबसे पहले 10–15 किलो, खेत की उपजाऊ मिट्टी लाकर, सिल्साऊलिन पर बराबर मात्रा में बिछा दें। 2–3 किलो, दो दिन पुराना गाय का गोबर लेकर 10 लीटर पानी का घोल तैयार करें, इस घोल में 20 से 30 ग्राम सुपर फॉस्फेट पाउडर मिलाकर यह घोल सिल्साऊलिन पर डाल दें। अब आवश्यक

विभिन्न चारा फसलों का वार्षिक उत्पादन (टन प्रति हैक्टेयर) और उनमें प्रोटीन की उपलब्धता (प्रतिशत में)

फसल का नाम	चारा फसल का वार्षिक उत्पादन प्रति हैक्टेयर	शुष्क भार	प्रोटीन की मात्रा
संकर नेपियर	250 टन	50 प्रतिशत	4 प्रतिशत
रिजका	80 टन	16 प्रतिशत	3.2 प्रतिशत
चंवला	35 टन	7 प्रतिशत	1.4 प्रतिशत
एजोला	730 टन	56 प्रतिशत	20 प्रतिशत

अतिरिक्त पानी डालकर पानी की गहराई 10 से 15 सेमी. तक कर दें और पानी को व्यवस्थित होने दें। अब ताल में 0.5 से 1 किलो एजोला का शुद्ध कल्चर पानी में छिड़क दें और ऊपर पानी का फव्वारे अथवा झारे से हल्का छिड़काव करें, इससे एजोला के सभी पादप सीधे हो जायेंगे। एजोला तेजी से बढ़ता हुआ 10–15 दिन में पूरे ताल को भर देगा। अब यह प्रतिदिन गाय को खिलाने के लिए तैयार है।

एजोला की उपज

'ताल' से एजोला निकालने के लिए एक प्लास्टिक की छलनी उपयुक्त रहती है, जिसमें एक वर्ग से.मी. के छिद्र हो। यह छलनी 1 से 2 से.मी. बड़े पादप पृथक कर लेगी। और छोटे पादप पानी में रह जायेगें। एजोला को साफ पात्र में एकत्र करें, साफ पानी में अच्छी तरह धोकर इसे गाये को खिलायें ताकि इसमें गोबर की गंध समाप्त हो जाये। 1.5 से 2 किलो एजोला, बाजार में उपलब्ध पशुआहार के 3 से 4 किलो मात्रा के समकक्ष पौष्टिक होता है।

एजोला का रख–रखाव

एजोला का रख–रखाव अत्यंत सरल है। पांच दिन के अंतराल से प्रत्येक 'ताल' में दो दिन पुराना दो किलो गोबर तथा 20 ग्राम सुपर फॉस्फेट का पानी का घोल मिलाना है पानी का स्तर कम दिखें तो पानी मिलाना है।

30 दिन बाद 5 किलो मिट्टी को बदलना चाहिए, मिट्टी एजोला को आवश्यक खनिज लवण उपलब्ध कराती है। 30 दिन पश्चात् 25 फीसदी पानी भी बदलना चाहिए। और इस प्रकार 6 माह बाद पूरे साल को साफ करके नया ताल बनाना चाहिए। वैसे एजोला में बीमारी बहुत कम लगती है फिर भी अगर कोई कीड़ा लग जाए तो पूरी 'ताल' नष्ट करके, नई बनानी चाहिए तथा एजोला का नया कल्चर लगाना चाहिए। एजोला की पैदावार और बढ़वार के लिए सूर्य की रोशनी तथा सुपर फॉस्टफेट, यह दो अति आवश्यक तत्व है। केवल उसके अभाव में एजोला की बढ़वार प्रभावित होती है।

दो दिन पुराना गोबर का घोल, एजोला के लिए 'कार्बन' तत्व का महत्वपूर्ण स्रोत है, एजोला मीठे पानी की पैदावार है। खारे पानी में फसल लेने के लिए पानी में जिप्सम डालना चाहिए। एजोला के लिए ताल का पी.एच. 4 से 7 के मध्य होना चाहिए।

एजोला लगाने के लिए, स्वदेशी जागरण मंच (जोधपुर) से निःशुल्क ''कल्चर'' प्राप्त किया जा सकता है।

– :: संपर्क करें ::–

स्वदेशी जागरण मंच, 96 पत्रकार कालोनी, जोधपुर, दूरभाष : 094141–26770

आधुनिक चाणक्य - नानाजी देशमुख

नानाजी देशमुख जी का जन्म ग्राम कडोली (जिला परभणी, महाराष्ट्र) में 11 अक्तूबर, 1916 को हुआ था। निर्धनता के कारण किताबों आदि के लिए वे सब्जी बेचकर पैसे जुटाते थे। वे लोकमान्य तिलक के विचारों से बहुत प्रभावित थे। संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार ने ही उन्हें संघ से जोड़ा। 1940 में महाराष्ट्र के सैकड़ों युवक प्रचारक बने। इनमें नानाजी भी थे।

नानाजी देशमुख की तीव्र बुद्धि तथा विलक्षण संगठन कौशल ने 1950 से 1977 तक भारतीय राजनीति पर अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने विभिन्न विचार और स्वभाव वाले नेताओं को एक साथ लाकर कांग्रेस का सदा सत्ता में बने रहने का घमण्ड तोड़ दिया। उनका जन्म ग्राम कडोली (जिला परभणी, महाराष्ट्र) में 11 अक्तूबर, 1916 को हुआ था। निर्धनता के कारण किताबों आदि के लिए वे सब्जी बेचकर पैसे जुटाते थे। वे लोकमान्य तिलक के विचारों से बहुत प्रभावित थे। संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार ने ही उन्हें संघ से जोड़ा। 1940 में महाराष्ट्र के सैकड़ों युवक प्रचारक बने। इनमें नानाजी भी थे।

उन्हें उत्तर प्रदेश में पहले आगरा और फिर गोरखपुर भेजा गया। उन दिनों संघ की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। नानाजी एक धर्मशाला में रहते थे। वहाँ हर तीसरे दिन कमरा बदलना पड़ता था। अन्ततः एक कांग्रेसी नेता ने उन्हें इस शर्त पर स्थायी कमरा दिलवाया कि वे उसका खाना बना दिया करेंगे। नानाजी के परिश्रम से तीन साल में गोरखपुर के आसपास 250 शाखाएँ खुल गयीं। विद्यालयों की पढ़ाई तथा संस्कारहीन वातावरण देखकर उन्होंने गोरखपुर में 1950 में पहला सरस्वती शिशु मन्दिर स्थापित किया। आज तो ऐसे विद्यालयों की संख्या देश में 50,000 से भी अधिक है।

नानाजी देशमुख – 1916–2010

1947 में रक्षाबन्धन के शुभ अवसर पर लखनऊ में 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन' की स्थापना हुई, तो इसके प्रबन्धक नानाजी ही बने। वहाँ से मासिक राष्ट्रधर्म, साप्ताहिक पांचजन्य तथा दैनिक स्वदेश अखबार निकाले गये।

1952 में जनसंघ की स्थापना होने पर उत्तर प्रदेश में उसका कार्य नानाजी को सौंपा गया। 1957 तक प्रदेश के सभी जिलों में जनसंघ का काम पहुँच गया।

1967 में उत्तर प्रदेश में चौधरी चरणसिंह के नेतृत्व में पहली संविद सरकार बनी। इसमें नानाजी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विनोबा के भूदान यज्ञ तथा 1974 में इन्दिरा गान्धी के कुशासन के विरुद्ध लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुए आन्दोलन में नानाजी खूब सक्रिय रहे। पटना में जब पुलिस ने जयप्रकाश जी पर लाठियाँ बरसायीं, तो नानाजी ने उन्हें अपनी बाँह पर झेल लिया। इससे उनकी बाँह टूट गयी; पर जयप्रकाश जी बच गये।

1975 में इन्दिरा गान्धी ने देश में आपातकाल लगाकर सभी विपक्षी नेताओं को जेल में ठूँस दिया; पर नानाजी हाथ नहीं आये। आपातकाल के विरुद्ध बनी 'लोक संघर्ष समिति' के वे मन्त्री थे। उस समय हुए देशव्यापी सत्याग्रह में एक लाख से भी अधिक लोगों ने गिरफ्तारी दी। यद्यपि बाद में नानाजी भी पकड़े गये। 1977 के चुनाव में इन्दिरा गान्धी हार गयीं और दिल्ली में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। नानाजी ने सत्ता की बजाय संगठन को महत्व देते हुए अपने बदले ब्रजलाल वर्मा को मन्त्री बनवाया। इस पर उन्हें जनता पार्टी का महामन्त्री बनाया गया।

उस समय नानाजी सत्ता या दल में बड़े से बड़ा पद ले सकते थे; पर उन्होंने सक्रिय राजनीति छोड़कर 'दीनदयाल शोध संस्थान' के माध्यम से पहले गोंडा और फिर चित्रकूट में ग्राम विकास का कार्य प्रारम्भ किया। अपने राज्यसभा के सांसद काल में मिली सांसद निधि का उपयोग उन्होंने इन प्रकल्पों के लिए ही किया। कर्मयोगी नानाजी ने 27 फरवरी, 2010 को अपनी कर्मभूमि चित्रकूट में अंतिम सांस ली। उन्होंने देहदान का संकल्प पत्र बहुत पहले ही भर दिया था। अतः देहांत के बाद उनका शरीर आयुर्विज्ञान संस्थान को दे दिया गया।

– विजय कुमार

वित्त मंत्री की तरह भारत की महिलायें कभी घाटे का बजट नहीं बनाती हैं - मुरलीधर राव

7 फरवरी 2010 को जय प्रकाश उद्यान आदित्यपुर में स्वदेशी जागरण मंच जमशेदपुर विभाग की ओर से ''स्वदेशी परिवार समागम'' का कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें मा. मुरलीधर राव जी, स्वामी शिवरूपानन्द जी – भारत सेवा श्रम संघ, श्री दिनेश मंडल जी, क्षेत्रीय सहसंयोजक श्री सचिन्द्र बरियार सहित अन्य कार्यकर्ता ने भागीदारी निभायी।

कार्यक्रम में स्वामी शिवारूपानन्द जी ने अर्थनीतिगत संप्रदायवाद पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि आज स्वदेशी शिल्पों को नष्ट कर अर्थनीति के आजादी को खत्म करने का षड्यंत्र विकसित देश, बहुराष्ट्रीय कंपनियां एवं स्वदेशी एवं विदेशी शॉपिंग मॉल को सरकार का प्रोत्साहन और शासन एवं प्रशासन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों की कठपुतली बने बैठे है। आज हमें स्वदेशी परिवारों द्वारा इस षड्यंत्र को खत्म करना होगा।

श्री सचिन्द्र बरियार ने विदेशी कंपनी द्वारा भारत के परिवारवाद को तोड़ने का षड्यंत्रकारी बताया, साथ ही विदेशी कंपनी भारत के 'शिव परिवार' को तोड़कर ही यहाँ बाजारवाद पैदा कर रही है।

कार्यक्रम में श्री मुरलीधर राव ने भारतीय वित्त व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया और कहा जो हमेशा से घाटे का बजट पेश करते चली आ रही है। वैश्वीकरण के नाम पर विदेशों से कर्ज, स्वदेशी कर्ज, बैंकों से कर्ज, मंदिरों से कर्ज लेती आ रही है। विदेशों में पढ़े–लिखे, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष या विश्व बैंक में नौकरी करने वाले ही वित्त मंत्रालय को चला सकता है। इसी गलत फहमी को दूर करने के लिये हम लोगों ने स्वदेशी परिवार समागम किया है। हम वित्तमंत्री को ये बताना चाहते हैं कि हमारे बीस से पचीस करोड़ परिवार में गृहिणी जो बजट बनाती हैं कभी घाटे का नहीं बनता। अमेरिका में सबों की चिंता करती है सरकार और अपने देश में चिंता करता है – परिवार।

सरकार कोई भी हो फर्क नहीं पड़ता, यहाँ धनवान का नहीं त्याग करने वाले का आदर होता है। ये देश अमर है जब तक भारतीय परिवार है, त्याग है। जो परिवार के लिये जीता है, वही जाति, धर्म एवं समाज व देश के लिये जीता हैं भारत में सबसे ज्यादा सोना है जब कि यहाँ कोई खान नहीं है। अंत में उन्होंने कहा कि हम प्रतिज्ञा करें कि कभी भी ''सौ का नोट लेकर वोट नहीं डालेंगे।

कार्यक्रम के अंत में श्री जय प्रकाश ओझा ने अपने विचार और धन्यवाद ज्ञापन किया एवं पारिवारिक वनभोज के साथ ''स्वदेशी पारिवारिक समागम' के कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

मंच का परिवार सम्मेलन

दिनांक 14 फरवरी 2010 को स्वदेशी जागरण मंच जिला इकाई जहानाबाद ने अपना दूसरा परिवार सम्मेलन हर्ष एवं उल्लास के वातावरण में शहरी क्षेत्र के बभना ग्राम स्थित हनुमान मंदिर के प्रांगण में किया।

कार्यक्रम की शुरूआत मुख्य अतिथि श्री दिलीप निराला एवं सब जज श्री मनोज कुमार द्वारा संयुक्त रूप से दीप प्रज्ज्वलित करके किया गया।

कार्यक्रम का संचालन विभाग संयोजक श्री अनिरूद्ध कुमार ने किया जिसमें अनेक परिवार की महिलाओं ने स्वदेशी विषयक चर्चा में भाग लेकर अपने विचार प्रकट किये।

जिला संयोजक दीपक कुमार द्वारा जिले की नदियों को प्रदूषण एवं अतिक्रमण मुक्त कराने के लिए चलाये जा रहे मंच के आंदोलन को सम्मेलन के द्वारा समवेत स्वर से समर्थन दिया गया एवं पर्यावरण के लिए इस संघर्ष में सक्रिय सहयोग का आश्वासन की भी पुष्टि हुई।

सम्मेलन में महिला प्रतिनिधि श्रीमती मनोरमा सिंह अधिवक्ता ने महिला शक्तिकरण एवं पर्यावरण प्रदूषण पर अपना विचार रखा, वही गया से आयी महिला प्रतिनिधि ने नारी शक्ति की महत्ता पर जोरदार कविता सुनाकर लोगों में जोश भर दिया।

इसके अलावा महिला मोर्चा प्रमुख मीरा अम्बर, सरोज केशरी, सरिता कुमारी, विभाग सहसयोंजक प्रो. विनय शंकर पाठक, मीडिया प्रमुख सुबोध कुमार अम्बर, उमेश शर्मा ने कार्यक्रम में भाग लिया। कार्यक्रम का समापन जिला संयोजक ने किया।